शास्त्रिपरीक्षा के निबन्ध विषय का पाठ्य-ग्रन्थ

* श्री जैना-चार्य *

सम्पादक—

सोहनलाल जैन शास्त्री, काव्यतीर्थ,
सरल जैन ग्रन्थ भण्डार,
पुरानी चरहाई, जबलपुर।
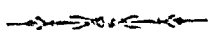
प्रकाशक—

सरल जैन ग्रन्थ भण्डार,
पुरानी चरहाई, जबलपुर।

प्रथमावृत्ति १०००
वीर. नि. सं. २४८२
श्रुतपञ्चमी
मूल्य ॥)

* विषयानुक्रमणिका *

❋ आद्य-निवेदन ❋

अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों की प्रेरणा थी कि एक ऐसी पुस्तिका प्रकाशित की जाय जिसमे जैन परीक्षालयों के पठनक्रम मे निर्धारित सभी ग्रन्थों के लेखको के सक्षिप्त परिचय हों, जिससे परीक्षार्थियो को परीक्षाओ में होने वाली कठिनाई दूर हो, परन्तु हमे यह कार्य दुःसाध्य प्रतीत होता था, इसलिये उस समय इस ओर हमारा लक्ष्य नहीं गया।

गत वर्ष जब जैन परीक्षालयों के पठनक्रम मे शास्त्रिपरीक्षा के तीनो खडो के निबन्ध विषय में कुछ आचार्यों और राजाओ के इतिहास सम्बद्ध किये गये, तब इच्छा हुई कि अब अवश्य एक ऐसी पुस्तिका का निर्माण होना चाहिये, जो परीक्षार्थियो के लिये इस विषय की पाठ्य-पुस्तिका का काम दे।

कुछ लब्धप्रतिष्ठ इतिहासज्ञ विद्वानों से ऐसी पुस्तिका के सम्पादन या लेखन के हेतु हमने प्रेरणा की, किन्तु कोई भी विद्वान यह करने को सहमत नहीं हुये, तब हमे स्वय ही इस पुस्तिका का लेखन वा सम्पादन करना पड़ा।

सभी इतिहासों को इस पुस्तिका में प्रकाशन के पहिले हमने अपने मासिक पत्र "महावीर" में उन्हें प्रकाशित किया और समय-समय पर इतिहासज्ञ विद्वानो से प्रार्थना की कि इस लेखमाला में उचित सशोधन सूचित करने की कृपा करें, परन्तु लगभग एक वर्ष तक यह लेखमाला प्रकाशित होते रहने पर भी किसी भी विद्वान् ने एक अक्षर का भी सुझाव नहीं दिया।

इन सब कारणो से विवश हो हमने यथाशक्ति इस पुस्तिका को लिखने का दुःसाहस किया है। हमें आशका ही नही, पूर्ण विश्वास है कि इसमें हम कई जगह स्खलित हुये होगे, परन्तु इतिहासज्ञ विद्वानो से एक बार फिर निवेदन है कि इसमे उचित सशोधन अवश्य ही सूचित करने की कृपा करें, जिससे अग्रिम सस्करण में सुधार किया जा सके।

यह पुस्तिका शास्त्रिपरीक्षा के तीनो खडो के निबन्ध विषय की पाठ्य-पुस्तिका होगी, साथ ही प्रत्येक ग्रन्थ के रचयिता की जीवनी का बोध कराने में भी उपयोगी होगी। हमें तो विश्वास है कि इसके प्रकाशन से गुणग्राही विद्वानो को विशेष प्रसन्नता और भारी आवश्यकता की पूर्ति होगी।

इस पुस्तिका मे अनेक विद्वानो की कृतियो का साहाय्य या अश लिये गये हैं, अतएव हम उनके हार्दिक आभारी हैं।

इस पुस्तक के सम्पादन मे किसलवास (झासी) निवासी श्री प० लालचन्द्रजी साहित्यरत्न और श्री बाबू अखिलेशकुमारजी घुराटिया जबलपुर ने विशेष सहयोग दिया है, एतदर्थ हम आपके आभारी हैं।

गच्छतः स्खलन क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

जिन अन्य आचार्यों वा महापुरुषो के इतिहास इस पुस्तिका में सम्बद्ध होना आवश्यक हो उनके शुभ नाम हमें सुझाने की कृपा कीजियेगा। हम आगामी सस्करण मे वे भी अवश्य सम्बद्ध कर देवेंगे। जो विद्वान् उन अवशिष्ट इतिहासो को सुसम्बद्ध कर भेजने की कृपा करेंगे उनका विशेष वा बड़ा आभार माना जावेगा।

साहित्य सेवक—

मोहनलाल शास्त्री।

जैनाचार्येतिहास

कविवर पं० दौलतराम जी

जन्म—कविवर का जन्म लगभग वि० स० १८५० के मध्य में हुआ था। कहते हैं कि सन १८५७ के गदर में भागते समय आप की जन्मपत्री गुम गई थी, अतः जन्मतिथिका ठीक निश्चय होना कठिन है।

कुटुम्ब—कविवर का जन्म हाथरस में हुआ था। आपके पिता का नाम टोडरमल, जाति पल्लीवाल और गोत्र गँगीरीवाल था। परन्तु आप फतहपुरिया कहलाते थे। आपका विवाह सेठ चिन्तामणि जी बजाज अलीगढ़ की सुपुत्री के साथ हुआ था। आपके दो पुत्र भी थे।

विभिन्नता—आप पद्मपुराण आदि ग्रन्थोके टीकाकार दौलतराम काशलीवालसे भिन्न हैं। जो अनेकान्त वर्ष दश, किरण एकसे स्पष्ट है।

व्यवसाय—हाथरस में थोड़े दिन बजाजी का काम करने के बाद आप अलीगढ़ चले गये और वहा छींट छापने (छीपा) का काम करने लगे थे। सम्भव है कि दिनों के फेर से आपको ऐसे दिन देखना पड़े हो।

प्रतिभा—जब आप काम करने बैठते थे तब सामने चौकी पर जैन सिद्धान्त के ग्रन्थ रख लेते थे। और काम करते-करते एक दिन मे ६०-७० श्लोक कण्ठस्थ कर लिया करते थे। तब अवकाश के समय आपकी बौद्धिक प्रतिभा का कहना ही क्या है।

कृतियां—आपकी अमूल्य कृतियो मे एक छहढाला ही आपको अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। जनता की बोली में सारे तत्त्वो का निचोड़ छोटी सी पुस्तिका में आकना आपकी निजी विशेषता है।

स्वर्गवास—आपने वि० स० १८६१ में अक्षयतृतीया को छहढाला ग्रन्थ की रचना की थी। वि० सं० १९२३ में भारत की राजधानी देहली ने आपका अन्तिम दिन देखा था।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

हमारे चरित्रनायक दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के नन्दिसंघ में कर्णाटक-प्रान्तस्थ देशीयगण के मुनीश्वर थे। इस गण में अभयनंदी और वीरनंदी आदि अनेक विद्वान् 'सिद्धान्तचक्रवर्ती पद से विभूषित हुये हैं। हमारे चरित्रनायक को भी यह पद प्राप्त हुआ था।

द्रविडदेशीय प्रतापी राजा चामुण्डराय के साथ हमारे आचार्य-प्रवर का अतिशय धार्मिक सम्बन्ध था। इन्होंने विक्रम सवत् ७३५ मे चैत्रशुक्ला पचमी रविवार को श्रवणवेलगुल में लोकविख्यात गोम्मटस्वामी (बाहुबलि) की प्रतिष्ठा की और श्री नेमिचन्द्रस्वामी के चरणों की साक्षीपूर्वक ९६ हजार दीनार (बत्तीस रत्ती सुवर्ण के सिक्का) का गाव गोम्मटस्वामी के उत्सवादि के हेतु नियुक्त किया था। इससे विक्रम सवत् ७३५ मे आपका अस्तित्व तथा दक्षिण प्रान्त को सुशोभित करना निर्विवाद सिद्ध हे।

गोम्मटसार के 'णमिऊण' इत्यादि उद्धरण से निश्चित है कि अभयनंदी, इन्द्रनंदी, वीरनंदी और कनकनंदी ये चारो महान आचार्य हमारे चरित्रनायक के गुरु थे। ये चारों तथा श्रीनेमिचन्द्र जी प्राय एक ही समय हुए हैं।

आचार्यप्रवर के बनाये हुए द्रव्यसग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार और त्रिलोकसार ये चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। कोई महानुभाव द्रव्यसग्रह के कर्त्ता और गोम्मटसार के कर्त्ता से विभिन्नता की आशका करते हैं, किन्तु विचार करने पर यह उचित प्रतीत नहीं होता।

श्रीनेमिचन्द्र स्वामी सस्कृत, प्राकृत और कर्नाटकी के प्रौढ़ विद्वान् थे। आपके प्रधान शिष्य श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्य थे, जिन्होंने हमारे चरित्रनायक के रचे त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों की टीकाए की हैं और उपरोक्त तीनो भाषाओं के प्रौढ़ जानकार होने से 'त्रैविद्य' पद पाया था।

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य

स्वामी समन्तभद्र का जन्म दक्षिण भारत के फणिमंडल देश के उरगपुर नगर मे हुआ था। यह कावेरी नदी के तट पर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था, इसे ही पुरानी त्रिचनापल्ली कहते हैं। आपके पिता का नाम निश्चित नहीं। आप कदम्ब राजवंश के एक क्षत्रिय राजकुमार थे और आपका जन्मकालिक नाम शान्तिवर्मा था।

आपने उरगपुर मे शिक्षा-दीक्षा पाई थी। आपके गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट होने का निश्चय नहीं। आपने अल्पवय मे ही कांची या उसके आसपास मुनिदीक्षा धारण की थी। आपके दीक्षागुरु का भी निर्णय नहीं, तो भी आप मूलसंघ के प्रधान आचार्यों मे थे। जैन साधु होकर आपने घोर तपश्चरण और अटूट ज्ञान प्राप्त किया।

स्वामी जी को एक बार मणुवकहल्ली ग्राम मे भस्मक रोग हो गया। अनेक उपचार करने पर भी शान्ति नहीं मिली। तब आपने गुरु से सल्लेखना ग्रहण कराने के याचना की। गुरुदेव ने योगबल से जान लिया कि समन्तभद्र अल्पायु नहीं है इसके द्वारा धर्म और शासन के उद्धार का महान कार्य होना है। उन्होंने आदेश दिया कि जिस वेश मे जैसे हो रोग-शान्ति का उपाय करो। शान्ति होने पर फिर मुनिदीक्षा ले लेना।

गुरु की आज्ञा पाकर स्वामी जी कॉंची पहुँचे। वहां शिवकोटि राजा के 'भीमलिंग' शिवालय में जा राजा को आशीर्वाद देकर बोले, कि मैं यह सब नैवेद्य शिवजी को खिला सकता हूँ। स्वीकृति पाकर स्वामी जी अकेले ही मन्दिर मे रह गये और सारा नैवेद्य खा गये। किवाड़ खोलने पर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वह प्रतिदिन उत्तमोत्तम पदार्थ भेजने लगा। किन्तु जब स्वामी जी की जठराग्नि शांत हो चली, भोजन बचने लगा। स्वामी जी ने बहुत बहाना बनाया पर राजा को संतोष नहीं हुआ और उसने शिवालय

को सेना से घेर लिया तथा दरवाजा खोल देने की आज्ञा दी। कोलाहल सुनते ही स्वामी जी ने उपसर्ग की निवृत्तिपर्यन्त समाधि धारण कर 'स्वयम्भूस्तोत्र' रचना शुरू किया। तब अष्टम तीर्थङ्कर की स्तुति प्रारंभ होते ही शिवलिंग फट कर उसके बीच से चन्द्रप्रभु भगवान का स्वर्णमय प्रतिबिम्ब प्रगट हुआ। इस चमत्कार को देखकर राजा दंग रह गया और स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा। पश्चात् अपने पुत्र श्रीकंठ को राज्य देकर अपने भाई शिवायन सहित मुनि हो गया। स्वामी जी ने भी रोगनिवृत्ति पाकर पुनः दीक्षा ले घोर तपश्चरण कर आचार्य पद पाया।

आपकी वाक्शक्ति अप्रतिहत थी। आपने कई बार सर्वत्र घूम कर कुवादियों का गर्व खंडित किया था। आपको योगबल से चारण ऋद्धि प्राप्त थी, जिससे आप सैकड़ों कोश की यात्रा बात की बात में कर लेते थे। इसीलिये आप समस्त देशों में वाद के लिये एकाकी सिंह के समान घूमे थे।

जिनसेन, वादिराज, शुभचन्द्र, अजितसेन, विद्यानंदि आदि दिगम्बर आचार्यों तथा हेमचन्द्रसूरि आदि श्वेताम्बर आचार्यों ने आपको अनेक विशेषणों के विभूषित किया है। अपनी घोर तपश्चर्या के द्वारा आपने तीर्थङ्करत्व का पुण्य प्राप्त किया। जिससे आप इसी भारतवर्ष में भावी तीर्थङ्कर होने वाले हैं।

आपने आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, स्वयम्भूस्तोत्र, जिनस्तुतिशतक, रत्नकरण्ड, तत्त्वानुशासन, प्राकृतव्याकरण, प्रमाणपदार्थ, कर्मप्राभृतटीका और गन्धहस्तिमहाभाष्य नामक ग्रन्थों की रचना की है।

आपका अस्तित्व समय शक संवत् ६० और ईस्वी संवत् १३८ में था। अर्थात् आपको हुये आज १८०० वर्ष के करीब हो चुके हैं। आपका विशेष परिचय "स्वामीसमन्तभद्र" 'वीरपाठावली' और 'विद्वद्रत्नमाला" आदि ग्रन्थों से जानना चाहिये।

---

* सूत्रकार श्री उमास्वामी। *

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के प्रणेता श्री उमास्वामी के कुल और जाति का परिचय आज तक उपलब्ध नहीं हुआ। परन्तु वृद्ध परम्परा से केवल इतना अवश्य विदित हुआ है कि वे दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे।

आपके विद्यागुरु और दीक्षागुरु कौन थे? यह भी अभी तक अविदित है। किन्तु कतिपय शिलालेखो से यह अवश्य विदित हुआ है कि आप श्री कोण्डकुन्द (कुन्दकुन्द) आचार्य की परम्परा के थे। तदुक्तम् —

> तदीयवंशाकरतः प्रसिद्धा—दभूददोषा यतिरत्नमाला।
> बभौ यदन्तर्मणिवन्मुनीन्द्र, स कुण्डकुन्दोदितचण्डदण्डः ॥ १ ॥
> अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे, वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
> सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं, शास्त्रार्थजातं मुनिपुङ्गवेन ॥ २ ॥

सिद्धर वस्ती के अन्तर्गत कौबेरी के स्तम्भ के लेख से विदित होता है कि कुन्दकुन्द की शिष्यमण्डली में उस समय उमास्वामी के समान अशेष पदार्थ का वेत्ता अन्य विद्वान् नही था।

शिलालेखो से यह भी विदित होता है कि अनेक राजा महाराजाओ से आदर और अनेक महर्षियो को प्राप्त बलाकपिच्छ आदि दिगम्बर जैन साधु आपके शिष्य थे। तदुक्तम्—

> अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसा— वाचार्य-शब्दोत्तरगृध्रपिच्छः।
> तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यः, तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी ॥ ३ ॥

श्री उमास्वामी स्वयं भी ऋद्धियो से सम्पन्न थे। आपके शरीर के स्पर्शमात्र से पवित्र वायु हालाहल विष को भी अमृत बना देती थी। आप अपनी ऋद्धि के प्रभाव से आकाश मे चला करते थे।

> तस्मादभूद्योगिकुलप्रदीपो, बलाकपिच्छः स तपोमहर्धिः।
> यदङ्गसंस्पर्शनमात्रतोऽपि, वायु र्विषादीनमृतीचकार ॥ ४ ॥

रजोभिरस्पष्टतमत्वमन्त-र्बाह्ये ऽपि संव्यञ्जयितुं यतीशः।
रजःपदं भूमितलं विहाय, चचार मन्ये चतुरङ्गुल सः॥ ५॥

—नगरताल्लुके का दि० शिलालेख नं० ४६

नगर ताल्लुके के एक दिगम्बर शिलालेख नं० ४६ पर उल्लिखित लेख से इस ग्रन्थ के कर्त्ता का उमास्वाति नामान्तर भी प्रतीत होता है। इस प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय मे उमास्वामी और उमास्वाति नाम के अपनी ख्याति हैं। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय आपको उमास्वाति ही मानता है।

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तार—मुमास्वातिमुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीय, वन्दे ऽहं गुणमन्दिरम्॥ ६॥

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं, गृध्रपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसञ्जात-मुमास्वामिमुनीश्वरम्॥ ७॥

एकबार मयूरपिच्छ गिर जाने पर प्राणिरक्षा की शुभभावना से आपने गीध के पखो से पीछी का काम चलाया था। जिससे आप 'गृध्रपिच्छ' कहे जाने लगे थे। तदुक्तम्—

स प्राणिसंरक्षणसावधानो, बभार योगी किल गृध्रपिच्छान्।
तदा प्रभृत्येव बुधा यमाहु-राचार्यशब्दोत्तर-गृध्रपिच्छम्॥ ८॥

प्रथम शताब्दी के अन्त में या द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ मे आपने अपने शुभजन्म से इस भूतल का अलङ्कृत किया था। श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार ने श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार की भूमिका में अनेक प्रमाणो से आपको द्वितीय शताब्दी का विद्वान सिद्ध किया है।

समन्तभद्र स्वामी का अस्तित्व समय ईस्वी स० १३८ में था। आपने उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र पर ८४००० श्लोकप्रमाण गन्ध-

हस्तिमहाभाष्य नामक ग्रन्थकी रचना की है। अतः यह सर्वविदित है कि उमास्वामी समन्तभद्र से पूर्वके प्रथम शताब्दीके विद्वान हैं। तदुक्तम्—

समन्तभद्रो ऽजनि भद्रमूर्तिः, ततः प्रणेता जिनशासनस्य।
यदीयवाग्वज्रकठोरपातः, चूर्णीचकार प्रतिवादिशैलान्॥ १॥

प्रोफेसर चक्रवर्ती महोदय ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य का समय अनेक प्रमाणो से ईस्वी की प्रथम शताब्दी निर्णीत किया है। इसलिये श्री उमास्वामी का समय श्री कुन्दकुन्द और श्री समन्तभद्र के बीच प्रथम शताब्दी का अन्त या द्वितीय शताब्दी का प्रारम्भ निश्चित होता है।

श्री उमास्वामी की मान्यता दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायो मे समानरूप से है।

जैनधर्म के दोनों सम्प्रदायो में तत्त्वार्थसूत्र की भी एकसी मान्यता और आदर है। दोनो सम्प्रदायो के प्रमुख आचार्यो ने इस ग्रन्थ के स्पष्टीकरणार्थ अनेक टीकाग्रन्थ रचे है। जैसे—समन्तभद्रस्वामी ने गन्धहस्तिमहाभाष्य। पूज्यपादस्वामी ने सर्वार्थसिद्धि। महाकलङ्क-देव ने राजवार्तिक। विद्यानन्दिस्वामी ने श्लोकवार्तिकालङ्कार। भास्करनन्दी ने भास्करीटीका। श्रुतसागराचार्य ने श्रुतसागरीटीका। द्वितीय श्रुतसागर ने तत्त्वार्थसुखबोधिनी टीका। विबुधसेनाचार्य ने तत्त्वार्थटीका। योगीन्द्रदेव ने तत्त्वप्रकाशिका टीका। गृहस्थाचार्य योगदेव ने तत्त्वार्थवृत्ति। गृहस्थाचार्य लक्ष्मीदेव ने तत्त्वार्थटीका और श्री अभयनन्दिसूरि ने एक टीका।

प्रकृत ग्रन्थ जैनसाहित्य का प्रथम सूत्रग्रन्थ तो है ही, संस्कृत जैनसाहित्य का भी यह आद्य ग्रन्थ है। उस समय तक जैनसाहित्य प्राकृतभाषा मे ही पाया जाता था तथा प्राकृत में ही नवसाहित्य का सृजन होता था। इस ग्रन्थ के रचियता ने संस्कृत भाषा मे ग्रन्थ रचना का ओंकार किया। और समस्त जैन सिद्धान्त का सूत्रो में निबद्ध

करके गागर में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ कर दिखाया। आपका यह संकलन इतना सुसम्बद्ध और प्रामाणिक सिद्ध हुआ कि भगवान महावीर की द्वादशाङ्ग वाणी की तरह ही यह जैनदर्शन का आधार स्तम्भ बन गया।

आचार्यप्रवर उमास्वामी का नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना के कारण अजर अमर है। यह ग्रन्थ जैनो की 'वाईविल' है।

रचना के विषय में कहा गया है कि सौराष्ट्र प्रान्त में उर्जयन्त गिरि के निकट गिरिनार नगरमें आसन्नभव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न, श्वेताम्बर भक्त 'सिद्धय्य' नामक एक विद्वान श्वेताम्बर शास्त्र का जानकार था। 'उसने दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पटिये पर लिख छोडा। एक समय चर्यार्थ श्री गृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामी' मुनिवर आये और उन्होने आहार लेने के पश्चात् उस पटिये को देख कर उस सूत्र में 'सम्यक्' शब्द जोड़ दिया।

जब वह सिद्धय्य विद्वान् अपने घर आया और उसने उस सूत्र मे सम्यक् शब्द जुडा देखा तब प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किन महानुभावने यह शब्द जोड़ा है ? माताने उत्तर दिया कि एक निर्ग्रन्थाचार्य ने यह शब्द जोडा है। तब सिद्धय्य तलाशता हुआ उनके आश्रममें पहुँचा और भक्तिभावसे नम्रीभूत होकर उक्त मुनि महाराजसे पूछने लगा कि आत्मा का हित क्या है ? मुनिराजने कहा 'मोक्ष' है। इस पर मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय पूछा गया। जिसके उत्तररूप में ही इस ग्रन्थ का अवतार हुआ है। इसी कारण इस ग्रंथ का अपरनाम "मोक्षशास्त्र" भी है। श्वेताम्बर उपासक सिद्धय्य के लिये एक निर्ग्रन्थाचार्य की शास्त्ररचना महान् वात्सल्य का द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य श्री उमास्वामी ही थे।

———o———

❋ श्री वादीभसिंह सूरि ❋

आपका जन्मनाम औडयदेव, दीक्षानाम अजितसेन और पाण्डित्योपार्जित उपाधि (नाम) वादीभसिंह है।

गद्यचिन्तामणि ग्रन्थ के 'श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतः' इत्यादि पद्य से स्पष्ट है कि आप 'श्रीपुष्पसेन मुनि के शिष्य थे ।

आपका जन्मस्थान प्रायः अज्ञात सा है। फिर भी विद्वज्जनो ने तमिलप्रदेश के पोलोरु तालुका के तिरूमलै नामक प्राचीनक्षेत्र में आपका जन्म सिद्ध किया है । मैसूर प्रान्त का 'पोम्बुच्च' क्षेत्र आपके प्रचार का केन्द्र था। मैसूर राज्य और पोम्बुच्च के विभिन्न स्थानों के शिलालेख इस विषय के साक्षी है।

आप तर्क, व्याकरण, छन्द, काव्य, अलङ्कार और कोश आदि ग्रन्थो के पूर्ण मर्मज्ञ थे। आपके वादित्वगुण की विद्वत्समाज में कितनी धाक थी, इस बात का निदर्शन आपकी 'वादीभसिंह' उपाधि ही पर्याप्त है । जो आपने अनेक स्थान पर महान् वादियो को जीत कर प्राप्त की थी।

कोप्प के एक शिलालेख में आपको जैनागम रूपी समुद्रवर्धक 'चन्द्रमा' कहा है । बोगदि के शिलालेख में एक 'महान् योगी' कहकर सम्बोधित किया गया है । इन शिलालेखों से आप महायोगी, त्याग, तपस्या और तत्त्वज्ञान के महास्तम्भ सिद्ध होते हैं ।

साधारण श्रावक से लेकर बड़े बड़े राज्य कर्मचारी तक आपके परम भक्त थे । श्रवणबेलगोल की मल्लिषेण प्रशस्ति से शान्तिनाथ और पद्मनाभ नामक आपके दो शिष्यो का उल्लेख पाया जाता है ।

'पोम्बुच्च' के न० ३७ सन् ११४७ के एक स्तम्भ-लेख से यह विदित होता है कि पम्पादेवी नामक आपकी एक विदुषी शिष्या भी थी। जो तैलसान्तर की सुपुत्री

और विम्बसार की भगिनी थी।

श्रीयुत टी० सी० कुप्पुस्वामी, प्रोफेसर एस. श्रीकण्ठ शास्त्री और श्रीयुत प० नाथूरामजी प्रेमी तथा "संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" के लेखकद्वय वादीभसिंह को दशवीं शताब्दी का विद्वान् मानते हैं। परन्तु न्यायाचार्य श्रीमान् पं० दरबारीजी कोठिया ने अनेकान्त में प्रकाशित अपने एक लेख में बारहवीं शताब्दी के अनेक शिलालेखों के आधार पर वादीभसिंह का उपस्थितिकाल ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध प्रमाणित किया है।

क्षत्रचूडामणि के अन्त में 'राजतां राजराजोऽयम्' इत्यादि पद्य से भी आपने वादीभसिंह को ११वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का चोलवंशीय राजराज के समय का विद्वान् साबित किया है।

वादीभसिंह की दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। पहली क्षत्रचूडामणि तथा दूसरी गद्यचिन्तामणि। इनमें पहला पद्यकाव्य और दूसरा गद्य काव्य है। इनमें क्षत्रचूडामणि तो खासा नीतिग्रन्थ ही कहा जा सकता है। इसके प्रायः प्रत्येक श्लोक के उत्तरार्ध में नीति कही गई है। आपकी गद्यचिन्तामणि की विवेचनशैली तो महाकवि "बाण" की कादम्बरी की रचनापद्धति को भी परास्त करती है।

आपकी ये दोनों कृतियां मद्रास विश्वविद्यालय के पठनक्रम में रखी गई हैं। इन अमरकृतियो के द्वारा आचार्य वादीभसिंह साहित्यगगन में अपनी अमर कीर्तिपताका फहरा गये हैं।

अष्टसहस्री ग्रन्थ के मङ्गलाचरणगत पद्य पर प्रदत्त 'तदेवं महाभागै.' इत्यादि टिप्पण से यह भी ध्वनित होता है कि आचार्य समन्तभद्र की आप्तमीमांसा पर भी वादीभसिंह ने कोई टीका अवश्य बनाई थी। सम्भव है इस के अतिरिक्त आपने न्याय का भी कोई मौलिक ग्रन्थ बनाया हो।

* पण्डित आशाधर *

"आशाधरो विजयतां कलिकालि- दासः"

पडित आशाधर अपने समयके अद्वितीय विद्वान् थे। आपकी प्रतिभा महान और पांडित्य विशाल था। गृहस्थ होने पर भी आपकी सांसारिक विरक्ति और निष्पृहता प्रशसनीय थी। अनेक भट्टारको और मुनियोंने भी आपका शिष्यत्व स्वीकार किया है।

पडित आशाधर ने बघेरवाल जाति के एक सुसंस्कृत और राजमान्य घराने में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम श्री सल्लक्षण और माता का श्रीरत्नी था। श्री सल्लक्षण जी राजा की उपाधिसे भूषित थे। अपनी योग्यता के कारण उन्हें मालवनरेश अर्जुन वर्म देवके सधि, विग्रह मत्री का पद प्राप्त था।

आपकी जन्मभूमि मांडलगढ़ थी। मेवाड़ प्रान्त में उस समय मांडलगढ़ चौहान राजाओं के आधीन था। बाल्यावस्था में ही आप मांडलगढ़ त्याग कर धारा नगरी आये थे। आपने व्याकरण और न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। आपके विद्यागुरु पं० महावीर जी प्रसिद्ध विद्वान् थे।

पडित आशाधरजी के पिता राज्यमान्य थे। यदि आप चाहते तो आपको भी उच्च राजपद प्राप्त हो सकता था। परन्तु आपने अपना जीवन जैनधर्म और साहित्य सेवा में ही लगा देना उचित समझा।

आपकी पत्नी सौ० सरस्वती के गर्भ से छाहड नामक सुयोग्य पुत्ररत्न हुआ था। आशाधरजी ने अपने सुयोग्य पुत्र की स्वय प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि जिस तरह सरस्वती (शारदा) के द्वारा मैंने अपने आपको उत्पन्न किया, उसी तरह अपनी सरस्वती नामक पत्नी के गर्भ से छाहड को उत्पन्न किया जो अतिशय गुणवान है।

विन्ध्यवर्मा का राज्य समाप्त होने पर आप नालछा (नलकच्छपुर) में रहने लगे। उस समय नलकच्छपुर के राजा अर्जुनवर्म देव थे। उनके राज्यमें आपने

अपने जीवन के पैंतीस वर्ष व्यतीत किये। और वहांके अत्यन्त सुन्दर नेमि चैत्यालयमें आप जैन साहित्य की उपासना करते रहे।

आपके ग्रन्थों पर से आपका जन्म विक्रम सवत १२३५ के लगभग माना जाता है। आपका अतिम ग्रंथ अनागारधर्मामृत की भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका है। आपने इसे कार्तिक सुदी ५ सोमवार वि० सं० १३०० में समाप्त की है। इस समय आपकी आयु ६५-७० वर्षके लगभग कही जाती है। इस परसे ही आपके जन्म का निर्णय हो जाता है।

पडित आशाधरजी को साहित्य तथा जैनसिद्धांत सम्बन्धी ज्ञान अगाध था। आप सभी विषयो के अधिकारी विद्वान् थे। मुनि उदयसेन ने आपको 'नयविश्व-चक्षु' तथा 'कलि-कालिदास कहा है। मदनकीर्ति यतिपति ने 'प्रज्ञापुंज' कह कर आपकी प्रशसा की है। स्वयं गृहस्थ रहकर भी आप बड़े बड़े मुनियो और भट्टारकों के गुरु रहे हैं।

जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य मतवाले विद्वान् भी आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध थे। विन्ध्यवर्मा के सधिविग्रहमत्री कवीश्वर विल्हण आपकी विद्वत्ता से अत्यत प्रभावित थे। उन्होंने पडितजी के अगाध पाडित्य की मुक्तकठ से प्रशसा की है।

मालव नरेश अर्जुनवर्मा के गुरु बालसरस्वती महाकबि मदन ने आपके निकट काव्यशास्त्रका अध्ययन किया था। आपने जैनेतर अष्टाङ्ग हृदय और काव्यालङ्कार जैसे ग्रथो की टीका की है।

आपने प्रमेयरत्नाकर, भरतेश्वराभ्युदय, ज्ञान दीपिका, राजमतीविप्रलम्भ, अध्यात्मरहस्य, मूलाराधनाटीका, इष्टोपदेशटीका, भूपालचतुर्विंशतिकाटीका, आराधनासारटीका, अमरकोशटीका, क्रियाकलाप, काव्यालङ्कारटीका, सहस्रनामस्तवनसटीक, जिनयज्ञकल्प सटीक, त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र, नित्यमहोद्योत, रत्नत्रयविधान, अष्टाङ्गहृदयोद्योतिनी टीका, सागार धर्मामृत सटीक और अनागार धर्मामृत सटीक ग्रन्थ रचे हैं।

* आचार्य अमृतचन्द्र *

आध्यात्मिक विद्वानो में भगवत्कुन्दकुन्द के बाद यदि किसी का नाम लिया जा सकता है तो वे आचार्य अमृतचन्द्र हैं। इतने महान् आचार्य के विषय में इसके सिवाय हम कुछ भी नहीं जानते कि उनके बनाये हुये अमुक अमुक ग्रन्थ हैं। उनकी गुरुशिष्य परम्परा से और समय आदि से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

वर्णैः कृतानि चित्रैः,
पदानि तु पदैः कृतानि वाक्यानि।
वाक्यैः कृतं पवित्र,
शास्त्रमिदं न पुनरस्माभिः॥

अपने दो ग्रन्थों के अन्त में दिये हुये इस पद्य से वे कहते है कि तरह तरह के वर्णों से पद बन गये, पदो से वाक्य बन गये और वाक्यों से यह पवित्र शास्त्र बन गया, मैंने कुछ भी नहीं किया। अन्य ग्रन्थों में भी उन्होने अपना यहीं निर्लिप्त भाव प्रकट किया है। इससे अधिक का परिचय देने की उन्होंने आवश्यकता ही नहीं समझी।

पं० आशाधार ने अपने अनागारधर्मामृत की भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका पृष्ठ १६०, ५८८ में 'एतदनुसारेणैव ठक्कुरोऽपीदमपाठीत्, 'एतच्च विस्तरेण ठक्कुरामृतचन्द्रसूरिविरचितसमयसार टीकायां द्रष्टव्यम्' इन दो स्थानों में अमृतचन्द को 'ठक्कुर' नाम से अभिहित किया है। ठक्कर और ठाकुर एकार्थवाची हैं। अक्सर राजघराने के लोग इस पद का व्यवहार करते थे। अतः यह उनकी गृहस्थावस्था के कुल का उपपद जान पड़ता है।

अनागारधर्मामृत टीका वि० सं० १३०० में हुई थी। अतएव उक्त समय से पहले के तो वे निश्चय से हैं। और प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका टीका में 'जावदिया वयणवहा' और 'परसमयाणं वयण' आदि दो गाथाएँ गोम्मटसार (कर्मकाण्ड ८९४-९५)से उद्धृत की

गई जान पड़ती हैं। चूकि गोम्मटसार के कर्त्ता नेमिचन्द्र सि० च० का समय विक्रम की ग्यारहवीं सदी का पूर्वार्घ है। इसीलिये अमृतचन्द इनसे बाद के हैं। अर्थात् वे वि० १३०० से पहले और ग्यारहवीं सदी के बाद किसी समय हुये हैं।

आचार्य शुभचन्द्र ने अपने ज्ञानार्णव (पृ० १७७) में अमृतचन्द्र के पुरुषार्थसिद्‌ध्युपाय का 'मिथ्यात्ववेदरागा' आदि पद्य 'उक्त च' रूप से उद्धृत किया है, इसीलिये अमृतचन्द्र शुभचन्द्रसे भी पहले के हैं। और पद्मप्रभ मलधारिदेव ने शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव का एक श्लोक उद्धृत किया है, इसलिये शुभचन्द्र पद्मप्रभ से पहले के हैं।

लेखान्तर में पद्मप्रभ का समय विक्रम की बारहवीं सदी का अन्त और तेरहवीं सदी का प्रारम्भ बतलाया है। इसलिये अमृतचन्द्र का समय विक्रम की बारहवीं सदी के बाद नहीं माना जा सकता।

डा० ए० एन उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में तात्पर्यवृत्ति के कर्त्ता जयसेन का समय ईसा की बारहवीं सदी का उत्तरार्ध अर्थात् विक्रम की तेरहवीं सदी का प्रारम्भ अनुमान किया है। और जयसेन अमृतचन्द की तत्त्वदीपिका से यथेष्ट परिचित जान पडते हैं। इससे भी अमृतचन्द्र का समय उनसे पहले, विक्रम की बारहवीं सदी ठीक जान पड़ता है।

इस ग्रन्थ मे काष्ठासघ, मूलसघ और माथुरसघो का उल्लेख है। इनमें से अतिम माथुरसघ की उत्पत्ति देवसेनसूरि के दर्शनसार में वि० स० ९५३ के लगभग बतलाई गई है। यदि वह सही है तो यह ग्रन्थ विक्रम की ग्यारहवीं सदी से पहले का नहीं हो सकता।

अनेक प्रमाणों से अनुमान किया जाता है कि अमृतचन्द्र का कोई प्राकृत ग्रन्थ भी अवश्य होगा।

आपके बनाये हुए पुरुषार्थ सिद्‌ध्युयाय, तत्त्वार्थसार, समयसारटीका, प्रवचनसारटीका,

पञ्चास्तिकायटीका ये पांच ग्रन्थ हैं।

अभी हाल ही रल्हण के पुत्र सिंह या सिद्ध नामक कवि का 'पज्जुण्णचरिउ' (प्रद्युम्नचरित्र) नाम का अपभ्रंश काव्य प्राप्त हुआ हैं। जो कि बांभड़वाड़ा (सिरोहीके पास) निर्मित हुआ था। उस समय वहां का राजा गुहिल-वंशी भुल्लण था जो मालवनरेश बल्लाल का मांडलिक था और जिस का राज्यकाल विक्रम संवत् १२०० के आसपास है। इस काव्य में लिखा है कि एक समय मलधारिदेव माधवचन्द्र के शिष्य अमियचदु (अमृतचन्द्र) विहार करते हुए बांभणवाड़े में आये। कवि ने उनकी अभ्यर्थना की और उन्हीं के कहने से प्रद्युम्नचरित रचा।

अमृतचन्द्र को कवि ने तप तेज दिवाकर, व्रत तप शील रत्नाकर, तर्कलहरिझंकोलितपरमत, वरव्याकरण—प्रवरप्रसारित—पद, अगमसरस्वती आदि विशेषण दिये हैं। इन विशेपणों में यद्यपि ऐसी कोई सूचना नहीं है, जिससे निश्चय पूर्वक इन अमृतचन्द्र को प्रसिद्ध ग्रन्थकार अमृतचन्द्र कह सकें। अमृतचन्द्र ने अपने गुरु का नाम भी कहीं नहीं दिया है, जिससे मलधारि माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचन्द्र से उनकी एकता सिद्ध की जा सके। फिर भी संभावना है कि दोनों एक ही हो और इसीलिये यहां इस प्रसंग का उल्लेख कर देना उचित प्रतीत हुआ। ऊपर अमृतचन्द्र के समय का जो अनुमान किया गया है उससे भी इसमें इतना अधिक अन्तर नही है कि उसका समाधान न हो सके। संभव है बांभड़-बाड़े में आने के समय वे वृद्ध हों और अपने ग्रन्थों की रचना वे इससे बहुत पहिले कर चुके हों।

* आचार्य माणिक्यनन्दी *

आप नन्दिसघ के प्रमुख आचार्यों में हैं। विन्ध्यगिरि के शिलालेखों में से सिद्धरवस्ती में उत्तर की ओर एक स्तम्भ पर जो ई० सन् १३९८ का अभिलेख उत्कीर्ण है उसमें उल्लिखित नन्दि-सघ के आठ आचार्यों में आचार्य माणिक्यनन्दी का भी नाम है।

ये अकलङ्कदेव की कृतियों के मर्मस्पष्टा और अध्येता थे। इनकी उपलब्ध कृति एकमात्र परीक्षामुख है। जिस पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड और लघु अनन्तवीर्य ने प्रमेयरत्न माला टीका लिखी है।

अकलङ्क, विद्यानन्द और माणिक्यनन्दी के ग्रन्थो का सूक्ष्म अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि माणिक्यनन्दी ने केवल अक-लङ्कदेव के न्याय ग्रन्थो का ही दोहन कर अपना परीक्षामुख नहीं बनाया, किन्तु विद्यानन्द की प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदि तर्क ग्रन्थो का भी दोहन कर उसकी रचना की है।

आ० माणिक्यनन्दी लघु अनन्त-वीर्य के उल्लेखानुसार सप्तम सदी के अकलङ्कदेव के उत्तरवर्ती और ग्यारहवीं सदी के प्रभाचन्द्र के पूर्व-वर्ती विद्वान् हैं। श्री पं महेन्द्रकुमार जी काशी ने अपने न्यायकुमुदचन्द्र प्र. भाग पृ. १७३ पर इन्हें विद्यानन्द का समकालीन तथा ९वीं शताब्दी का विद्वान् लिखा है।

परन्तु हमारी परीक्षामुखटीका की भूमिका में श्री० प० दरबारी लालजी कोठिया ने अनेक प्रमाणो से माणिक्यनन्दी का समय वि० स० १०५० से ११९० (ई० ९९३ से १०५३) सिद्ध किया है। और परीक्षामुख का रचना काल ई० स० १०२८ के लगभग लिखा है।

आचार्य प्रभाचन्द आपके शिष्य थे और आप कुन्दकुन्द आचार्य के आम्नायी हैं।

——❀——

* महाकवि धनञ्जय *

कविवर धनञ्जय द्वारा ही रचित द्विसंधान काव्य के अन्तिम पद्य से विदित होता है कि कविवर की माता का नाम श्रीदेवी, पिता का नाम वासुदेव और गुरुका शुभ नाम दशरथ था।

आपने द्विसन्धानकाव्य, विषापहारस्तोत्र और धनञ्जयनाममाला इन तीन ग्रन्थो की रचना की है। द्विसन्धान काव्य का 'राघवपाण्डवीय' नामान्तर भी है। नाममाला के पद्य नं० २०४ से स्पष्ट है कि यह धनञ्जय नाममाला धनञ्जय कवि द्वारा ही रचित है।

आपने अपने द्विसन्धान काव्य में केवल जैन शास्त्रीय कथाओ का विवेचन किया है इससे तथा नाममाला के श्लोक न० ११६, १२७, १३२, १५३, १८६, १६१, १६३ में दी गई जैन धार्मिक शिक्षाओ से आपका जैनत्व भी निर्विवाद है।

आपकी लेखिनी अत्यधिक चमत्कारपूर्ण थी। आपने द्विसन्धान महाकाव्य में इतनी अनूठी श्लेषात्मक रचना की है कि प्रत्येक पद्य से दो दो अर्थ प्रकट होते हैं। जिनसे राम और कृष्ण की दो सुसगत विभिन्न कथाओ का सृजन होता है। एक ही पद्य से दो विभिन्न महापुरुषो की कथानक कहने वाला महाकाव्य अन्य सम्प्रदायो मे भी आज तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस प्रकार के काव्य प्रबन्ध की रचना महाकवि धनञ्जय के ही सामर्थ्य की चीज है।

नाममाला की रचना करके तो आप गागर में सागर भरने की कहावत चरितार्थ कर गये हैं। इतना सरल, सक्षिप्त और साङ्गोपाङ्ग शब्दकाश कोई नहीं रच सका।

विषापहार के विषय में तो यो कहा जाता है कि एक बार आपके पुत्र को सर्प ने डस लिया था। उस समय आप जिनपूजन में मग्न थे। सर्प द्वारा पुत्र के डसे जाने का सम्वाद प्राप्त होने पर भी आप पूजन से विचलित नहीं हुए। पश्चात् आपने जब पूजन की समाप्ति की तब "विषापहार" स्तोत्र रच कर जिनभक्ति के प्रभाव से अपने पुत्र को निर्विष किया था।

ख्रिस्ताब्द ८८४ तक काश्मीर में 'अवन्तिवर्मा' राजा राज्यासीन रहे हैं। उनके समय में 'ध्वन्यालोक' के कर्ता 'आनन्दवर्धन' कवि हुए हैं। उन्होने अपने ग्रन्थो में धनञ्जय कवि की स्तुति की है।

द्विसंधाने निपुणतां, सता चक्रे धनञ्जयः
यया जातं फलं तस्य, सता चक्रे धनं जयः

इस अर्थात् धनञ्जय (कवि और अर्जुन) ने द्विसन्धान (इस नाम के काव्य में और दोहरे निशाने लगाने मे) जो निपुणता प्राप्त की, उसमे उन्हें (कवि को और अर्जुन को) सज्जनो के समूह में धन और जयरूप फल प्राप्त हुआ।

जल्हण कवि आदि द्वारा सगृहीत। 'सूक्ति मुक्तावली' के प्राचीन कवि वर्णन में यह श्लोक आया है। उसका उल्लेख 'राजशेखर' कवि ने अपने ग्रन्थो में किया है। उसकी प्रशसा पूज्य जैनाचार्य 'सोमदेव सूरि' ने अपने यशस्तिलक चम्पू में की है। इस चम्पू का निर्माण ख्रिस्ताब्द ९५९ मे हुआ है। इस वर्णन से कविवर धनञ्जय का समय, राजशेखर, रत्नाकर और आनन्दवर्धन कवि से पूर्व ८ वी ९ वीं शताब्दी के मध्य प्रतीत होता है।

—द्विसन्धानकाव्य की भूमिका से।

श्री दि० जैन ग्रन्थ श्रीवीरसेन कृत धवलाटीका का निर्माण वि० स० ८७३ में हुआ है। उसमें इति शब्दके अनेक अर्थ बतलाने के लिए निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है।

हेतावेवं-प्रकारादौ, व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च, इतिशब्द' प्रकीर्तित'

धनञ्जय कवि का ही बनाया 'नाममाला कोश' है। जिसमे उन्होने अपने 'द्विसन्धान-काव्य' को तथा अकलङ्क के प्रमाण-शास्त्र को और पूज्यपाद के लक्षणशास्त्र को अपश्चिम (बेजोड़) कहा है। अर्थात् उनके समान फिर कोई नहीं लिख सका। इससे यह तो स्पष्ट था, कि उक्त कोषकार धनञ्जय, पूज्यपाद और अकलक के पश्चात् हुए हैं। किन्तु कितने पश्चात् हुए इसका अभी तक निर्णय नही होता था। धवला के उक्त उल्लेख से प्रमाणित है कि—धनजय का समय धवला की समाप्ति अर्थात् वि० स० ८७३ से पूर्व है।

—धवलाभूमिका पृष्ठ ६२ से

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेशरी, व्याख्यानवाचस्पति
※ पं० गोपालदास जी वरैया ※

पंडित जी का जन्म वि० सं० १९२३ के चैत्र में आगरा में हुआ था। आपकी जाति "वरैया" और गोत्र "एछिया" था। पिताजी की मृत्यु बचपन में हो जानेसे आपकी शिक्षा हिन्दी मिडिल एवं छठवीं-सातवीं अंग्रेजी तक ही हो सकी थी। स्कूली वातावरण का आप पर गहरा प्रभाव था। खेलना कूदना, धूम्रपान और शैर आदि गाना आपके प्रमुख दैनिक कृत्य थे। प्रारम्भिक जीवन में आपका जिनदर्शनके प्रति भी प्रेम नहीं था।

पण्डित जी का पठित ज्ञान बहुत अल्प था। जिस भाषा के आप विद्वान कहला गये, उसका आपने कोई व्याकरण तक नहीं पढ़ा था। आपने स्वावलम्बनशीलता एवं निरन्तर के अध्यवसाय से पाण्डित्य प्राप्त किया था। आप जीवनपर्यन्त विद्यार्थी रहे। आपने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया, वह अपने अध्ययन के बल पर। इस कारण उसका मूल्य रटे या घोखे हुए ज्ञान से कहीं अधिक था। निरन्तर १० वर्ष के अध्यापन, शंका-समाधान और अनेक महान ग्रन्थों के अवलोकनके फल स्वरूप आपका ज्ञान असामान्य एवं असाधारण हो गया और आप धर्म तथा न्यायके अद्वितीय विद्वान हो गये।

आप न्यायशास्त्र के गहन सिद्धान्तों सदृश रूखे विषयों पर २-३ घंटे लगातार बोल सकते थे। आर्य समाजीय बड़े-बडे शास्त्रार्थी विद्वानोंसे आपकी महान् विजय हुई।

विद्वान या तो बोल सकते हैं या लिख सकते हैं, परन्तु पण्डित जी इसके अपवाद थे। आप अच्छे वक्ता होने के साथ ही साथ अच्छे लेखक भी थे। भले ही कार्य व्यस्तता के कारण इस कला का आपके जीवन में विकास न हो पाया हो, किन्तु यह मानना होगा कि आप जैन साहित्य के अच्छे लेखक कहला गये हैं।

आपके बनाये हुए ३ ग्रन्थ हैं:— जैनसिद्धान्तदर्पण, सुशीलाउपन्यास

और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। इनके प्रकाशन से जैन साहित्य की बहुत कुछ पूर्ति हुई है।

आजीविकोपार्जन के लिए आपने विविध व्यापार किये। अचौर्य एव सत्यव्रत पूर्णरूपेण पलते न देखकर अनेक व्यापारो का आपको परित्याग करना पडा। आपने अपने चरित्र से यह दिखला दिया कि ससार में व्यापार भी सत्य और अचौर्य को दृढ़ रखते हुए किया जा सकता है।

आपके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई से होता है। आपके और पडित धन्नालाल जी के उद्योग से वि० सवत् १६४६ में दि० जैन महासभा की स्थापना हुई। महासभा के महाविद्यालय के प्रारम्भिक कार्यों का सम्पादन आपके द्वारा होता रहा। वि० स० ५३ में स्थापित दि० जैन परीक्षालय का कार्य आपने बड़ी कुशलता से किया। दि० जैन सभा बम्बई की ओर से जनवरी १६०० में 'आपने "जैनमित्र" निकालना शुरू किया। आपके सामाजिक कार्यों से समाज में धर्म एवं शिक्षा का अच्छा प्रसार हुआ।

पण्डित जी ने एक पाठशाला खोली, जो आज मोरेना में "जैन सिद्धान्त विद्यालय" के नाम से सुप्रसिद्ध है। यहा से अनेक उच्च कोटि के विद्वान निकल चुके हैं।

पण्डित जी को कोई व्यसन नहीं था। सादा रहन-सहन, शुद्ध खान-पान, सरल व्यवहार, मृदु वचन और सत्यभाषण आपकी दैनिक चर्या के प्रमुख अग थे। आप में असाधारण उत्साह और लगन थी। आप अपनी धुन के पक्के थे। अपनी शक्तिपर आपको विश्वास था। जिस बात को सत्य मानते थे उसे कहने में आपको जरा भी सकोच नहीं होता था। पण्डित जी ने कभी किसी चीज का नाटक नहीं खेला। आप जब जो कुछ कहते थे, सच्चे जी से कहते थे। अधेरे से उजाले की ओर ले जाने वाली चीज से पण्डित जी निर्भीक थे और आपको चापलूसी तथा खुशामद से बहुत चिढ़ थी।

पडितजी की जैन ग्रन्थों पर श्रद्धा थी, वे नहीं चाहते थे कि जैन पाठशालाओ और परीक्षालयों

में जैनतर काव्य तथा नाटकादि ग्रन्थ पढ़ाए जांय।

आप अच्छे विचारक थे। "हम तो कहेंगे कि प० गोपालदास जी वरैया सचाई के साथ विचार स्वाधीनता का दरवाजा खोल गये। आ" अपनी विचारशक्ति के बल पर पदार्थ का स्वरूप इस ढग से वतलाते थे कि उसमें एक नवीनता मालूम होती थी। "आप गहरी से गहरी चर्चा को इतनी आसान बना देते थे कि एक बार तो तत्त्वो का बिलकुल अजानकार भी ठीक ठीक समझ जाता था। आपने जैनागम की ऐसी गुत्थियां सुलझाई जिनके सुलझाने में अनेक विद्वान उलझते चले गये। आप गोम्मटसार के प्रसिद्ध टीकाकार पं० टोडरमल जी की भी सूक्ष्म भूलें बतलाने में समर्थ हुए थे। जैन भूगोल के विषय में आपके विचार और कल्पनाएँ कौतूहलवर्धक हैं।

अपनी निस्वार्थ सेवा एवं परोपकारशीलता के भाव के कारण आपकी प्रतिष्ठा हुई। जो कुछ आपने किया उसका आपने प्रतिफल कभी नहीं चाहा। जैनधर्म की उन्नति एव विद्वानो की सख्या वर्धन के लिए निरन्तर निस्वार्थ परिश्रम किया। पडितजी की निस्वार्थ वृत्ति और ध्यानतदारी पर लोगो को दृढ़ विश्वास था।

जहां तक कौटुम्बिक सुख का सम्बन्ध है—आपको वह कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषय में हम आपको ग्रीस के विद्वान सुकरात की श्रेणी में रख सकते हैं। आपकी पत्नी का स्वभाव अति कर्कश, क्रूर कठोर और जिद्दी था। "जहां पडित जी को लोग देवता समझते थे वहां, उनकी पत्नी उन्हें कौड़ी काम का आदमी नहीं समझती थी। सारा समाज आज जिनके लिए रो रहा है, उनके लिए शायद पंडताइन जी का एक आंसू भी नहीं गिरा होगा।" पंडितजी इन कलहपूर्ण यातनाओ को बड़े धैर्य से सहन करते थे।

पंडित जी बहुत सीधे और भोले थे। एकाग्रता का उन्हें बहुत ज्यादह अभ्यास था।

यह समुज्वल प्रदीप सन् १९१७ में सर्वदा को शांत हो गया।

---

* आचार्य विद्यानन्द *

प्रस्तुत आचार्य का परिचय कराना सरल नहीं, क्योंकि आपके जीवनवृत्त से सम्बद्ध सामग्री अत्यल्प ही प्राप्त है। आपके पिता-माता कौन थे? किस कुल में आपका जन्म हुआ था? आपने कब और किससे दीक्षा ग्रहण की और आपके गुरु कौन थे? इत्यादि का कुछ भी पता नहीं है। आपने स्वकीय ग्रन्थो में भी अपने सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं किया।

विद्यानन्द ने राजमल्ल को सत्यवाक्याधिप कहा है। राजा राजमल्ल सत्यवाक् विजयादित्य के पुत्र थे। और वह सन् ८१६ ई० के लगभग राज्याधिकारी हुए। अतः विद्यानन्द जी नवीं शताब्दी के विद्वान होना चाहिए।

विद्यानन्द रचित युक्त्यनुशासन में आचार्य धर्मकीर्ति के वाक्य उद्धृत होने से आचार्य विद्यानन्द जी का समय धर्मकीर्ति के बाद वि० सं० ८६५ से पहिले और ८१० के बाद होना चाहिए।

विद्यानद कर्णाटक प्रान्त के रहने वाले एक जैन ब्राह्मण थे। युवावस्था में दारिद्र्य से अत्यन्त संतप्त थे। एक समय अन्तिम चोल राजा के दरबार में इन्होंने त्रिमूर्ति के पात्र रूप में अत्यन्त कलापूर्ण अभिनय किया। इनका अभिनय देखकर जनता और राजा मन्त्र मुग्ध से रह गये। इन्हें एक बार और भी जैन मुनि के पात्र रूप में जनता के सन्मुख आना पड़ा। जैन जनता अपने परमपूज्य मुनि का स्वाग देखना सहन नहीं कर सकी। उसने इसे अपना अपमान समझा और इसके प्रायश्चित स्वरूप विद्यानन्द जी को मुनिधर्म ग्रहण करने का आग्रह किया जिसे आपने स्वीकार किया।

एकबार भ्रमण करते समय उन्हें किसी सरोवर तटपर महान् निधि के दर्शन हुए उसी समय अचानक विद्यादेवराय नामक एक व्यक्ति वहा आया। जिसने उस निधि को लेना चाहा। किन्तु उस निधि के रक्षकदेव ने उसे रोकते हुए कहा कि तुम यह निधि विद्या-

नन्द को प्रसन्न करके ही ले सकते हो, तब उस व्यक्ति ने अपनी भक्ति द्वारा विद्यानन्द को प्रसन्न किया और सपूर्ण निधि ग्रहण की। उसे विद्यानन्द के ऊपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्हे अपने साथ ले जाकर उनकी स्मृति में विद्यानगर स्थापित किया।

विद्यानन्द जी की तर्कशक्ति चमत्कारिणी थी। देवेन्द्रकीर्तिजीने उन्हे 'तार्किकचूड़ामणि' और 'कवि' लिखा है। वादिराज जी ने उन्हें संसार के अनुपम रत्नो से देदीप्यमान अलकार की उपमा दी है।

जैन परम्परा में विद्यानन्द नाम के दो-तीन विद्वान हो चुके हैं। पहिले विद्यानन्द वे हैं जिनका उल्लेख शक सं० १४५२, ई० १५३० में उत्कीर्ण हुम्बुज के शिलालेख में विस्तार से मिलता है। वे वादी तो थे ही, कवि, समालोचक और जैनधर्म के प्रभावक प्रचारक भी थे।

दूसरे विद्यानन्द वे हैं जिनका उल्लेख उपरोक्त हुम्बुज के शिलालेख एवं "दशभक्त्यादि महाशास्त्र" दोनों में हुआ है। ये पूर्व कथित विद्यानन्द के ही शिष्य थे।

हमारे चरित्र नायक तीसरे ही विद्यानन्द हैं, जो दर्शन एवं तर्क के क्षेत्र में अपना कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रखते।

बहुत समय से यह समझा जा रहा है कि विद्यानन्द और पात्रकेसरी दोनों विद्वान एक ही हैं, किन्तु यह भ्रम ही था। "स्वामी पात्रकेसरी और विद्यानन्द दो भिन्न आचार्य हुये हैं—दोनों का व्यक्तित्व भिन्न है, ग्रन्थ समूह भिन्न हैं और समय भी भिन्न है।" अब सभी विद्वान् दोनों की विभिन्नता से सहमत हैं।

आ० विद्यानन्द बचपन से ही प्रतिभासम्पन्न एवं होनहार थे। उनकी स्वर लहरी ललित, मधुर और सरल थी, वे आत्मनिर्भर और तेजपूर्ण थे, उनके अवलोकन में विनय और आकर्षण प्रतिपल प्रतिबिम्बित होते थे। धार्मिकोत्सवों, जनसेवाओं, शास्त्रार्थों वादविवादों में वे विशेषरूप से भाग लेते थे। ज्ञानतृषा और ज्ञानेच्छा उन्हें निरन्तर बनी रहती थी। ज्ञानप्राप्ति ही उनका उद्देश्य था।

जैनदर्शन, आगम तथा तर्क सम्बन्धी विपुल साहित्य का आपने अध्ययन एव मनन कर उसे ग्रन्थ निर्माण मे कार्यान्वित कर सफल किया।

आपकी बुद्धि सूक्ष्म एव तीव्र थी जिसके बल पर आप शास्त्रो के गहनतम गूढ स्थलों को सरलतम एव स्पष्ट बना सके। विचारने की स्वतन्त्र शक्ति भी आपमें थी।

आ० विद्यानन्द उत्कृष्ट वैयाकरण, श्रेष्ठ कवि, अद्वितीय-वादी, महान् सैद्धान्ती और सच्चे शासनभक्त भी थे। आपके बाद आप जैसा महान् तार्किक और सूक्ष्मप्रज्ञ भारतीय क्षितिज पर— कम से कम जैन परम्परा में तो कोई दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

आ० विद्यानन्द को उमास्वामी, समन्तभद्राचार्य, अकलक आदि आचार्यों ने विशिष्ट रूपेण प्रभावित किया है तथा माणिक्य नन्दी, प्रभाचन्द, हेमचन्द्रादि आचार्य आपसे विशिष्ट रूपेण प्रभावित हुए हैं।

आचार्य विद्यानन्द की रचनाएँ दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं। टीकारूप और स्वरचित। प्रथम प्रकार की रचनाओ में 'तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक' सर्वश्रेष्ठ रचना है। २—'अष्टसहस्री' —"वास्तव में यदि विद्यानन्द अष्टसहस्री न बनाते तो अष्टशती का गूढ रहस्य उसी में छिपा रहता। अष्टसहस्री को विद्यानन्द ने कष्टसहस्री कहा है। "हजार शास्त्रों के सुनने से क्या, अकेली अष्टसहस्री सुन लीजिये। उससे ही समस्त तत्त्वो का ज्ञान हो जायगा।" ३—"युक्त्यनुशासन" भी ऐसा ही ग्रन्थ है।

स्वतन्त्र रचनाओ में–आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्रादि रचनाएँ आती है। विद्यानन्द और उनकी रचनाओ की जितनी भी प्रशसा की जाय, वस्तुतः वह कम ही है। आपके प्रचार का क्षेत्र गङ्गवाडि प्रदेश रहा है।

श्रीमत्पूज्यपादाचार्य

यो देवनन्दि – प्रथमाभिधानो,
बुद्ध्या महत्या च जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिः,
यत्पूजित पादयुग यदीयम् ॥

"जिनका जन्मकालिक नाम देवनन्दी था। बुद्धि की महत्ता से जो जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवोंद्वारा चरणोंकी पूजा की जानेसे पूज्यपाद नाम से विभूषित हुये।"

—श्रवणबेलगुल शिलालेख १०८

स्वामी पूज्यपादाचार्य एक प्रखर विद्वान, विषय प्रतिपादन की अपूर्व शक्ति से सम्पन्न, जिनशासन के उत्कृष्ट ज्ञाता एव प्रचुर प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। आप विद्वानो मे भूषण स्वरूप थे। आपकी रचनाएँ दिव्य एव अलौकिक ज्ञान से भरपूर हैं। आपकी कृतियो से सरलता एव सरसता बरसी पड़ती है।

आपने तत्त्वार्थसूत्र की अति सुन्दर टीका सर्वार्थसिद्धि के नाम से की है—जिसके मनन से प्रतीत होता है कि मानो आप उमास्वामी के अन्तर में पैठ गये है; तथा प्रत्येक सूत्र के प्रत्येक शब्द के अर्थ का विशद ज्ञानकर उन्हें ग्रन्थ के रूप मे सम्बद्ध करते गये हैं। तत्त्वार्थसूत्र के गहनतम स्थलो को सरलतम एव सरसतम बनाने मे आपकी लेखनी पूर्णतया सफल हुई

आप कर्णाटक देश के निवासी थे। आपके पिता का नाम माधवभट्ट और माता का नाम श्रीदेवी था। आप नन्दिसघ के प्रधान आचार्य थे। "आपका पहिले का नाम देवनन्दी था। पश्चात् समस्त शास्त्रतत्त्वार्थों के अध्ययन से आपका नाम जिनेन्द्रबुद्धि रखा गया। आपके तप की महिमा से आपके पादोदक मे स्वर्ण बनाने की शक्ति आगई थी तब से आपका नाम 'पूज्यपाद' प्रसिद्ध हुआ था।"

कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध कवि चन्द्रय ने स्वरचित पूज्यपादचरित में वर्णन किया है कि "कर्णाटक देश के कोले नामक ग्राम मे माधवभट्ट नामक एक ब्रह्मण था।

उसकी पत्नी का नाम श्रीदेवी था। उक्त दम्पती के ही आप पुत्ररत्न थे। पुत्र को ज्योतिषियों द्वारा त्रैलोक्यपूजित बतलाने के कारण उसका नाम पूज्यपाद रखा गया। माधवभट्ट ने अपनी पत्नी की विशेष प्रेरणा से जैनधर्म स्वीकार कर लिया, किन्तु उनके साले पाणिनि, जो कि व्याकरण के उच्चकोटि के विद्वान हो चुके हैं, मत विभिन्नता के कारण मुण्डी-गुण्ड नामक ग्राममें वैष्णव धर्मावलम्बी होकर साधुरूप में रहने लगे। पूज्यपाद की बहिन कमलिनी जिसका विवाह गुणभट्ट से हुआ था, उसके नागर्जुन नाम का पुत्र हुआ। सर्प के मुँह में फसे एक मेंढक को देखकर पूज्यपाद को वैराग्य होगया था।

व्याकरण ग्रन्थ की रचना में सलग्न पाणिनि को यह ज्ञात हो गया था कि निकट भविष्य में ही उसकी मृत्यु होने वाली है अतः वे पूज्यपाद के समीप आये और रचना पूर्ण करने का आग्रह किया। पूज्यपाद ने उसे स्वीकार कर लिया। तदन्तर सर्प से डसे जाने से पाणिनि की मृत्यु हो गई। उन्होने जैनेन्द्रव्याकरण, प्रतिष्ठा-लक्षण, वैद्यक एव ज्योतिष आदि विषयो के अनेक ग्रन्थो की रचना की।

अपने पिता के मर जाने पर नागार्जुन दरिद्र हो गया। तब उसे पूज्यपादने पद्मावती का मन्त्र, सिद्धि की विधि सहित दिया। मन्त्र सिद्ध करके नागार्जुन रस से सोना बनाने लगा। नागार्जुन को इस पर घमण्ड हो गया, उसके मद को पूज्यपाद ने साधारणसी वनस्पति द्वारा बडे बडे सिद्ध रस बना कर दूर कर दिया। जिसे देखकर नागार्जुन की पूज्यपाद के प्रति श्रद्धा उमड पड़ी और वह उनका अनन्य श्रद्धालु हो गया।

पूज्यपाद एक गगनगामी लेप विशेष लगाकर विदेह क्षेत्र भी जाया करते थे। उस समय उनके शिष्य वज्रनन्दी ने अपने साथियो से कलह कर द्राविड सघ की स्थापना की। आप चिरकाल तक योगाभ्यास में लगे रहे फिर एक

देव के विमान में बैठ कर अनेक तार्थ क्षेत्रो की यात्रा की। मार्ग में एक जगह आपके चर्मचक्षु का प्रकाश लुप्त हो गया, जिसे आपने शान्त्यष्टक द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया। फिर अपने ही ग्राम में समाधिपूर्वक आपका निधन हुआ।"

स्वामी पूज्यपाद व्याकरण, काव्य, न्याय, साहित्य, तर्क एव सिद्धान्तशास्त्रों के गहन अध्येता थे। समस्त विषयो मे आपकी समान गति थी। आप दार्शनिक भी थे और उच्चकोटि के कवि भी। वैद्यक के भी आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं। ज्ञानी के साथ ही साथ आप परमध्यानी योगी भी थे। आपकी अनेक विद्वानो ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है—

आप कवियों के तीर्थकर हैं—
जिनेसनाचार्य।

आप शब्दसागर के शशि है—
पद्मप्रभुदेव।

व्याकरणके अपूर्वरत्न—
कवि धनञ्जय।

आप जीवन पर्यन्त साहित्य-साधना एवं ग्रन्थनिर्माण में लगे रहे। अत में समस्त ससार से भिन्न अपनी अन्तरात्मा मे निमग्न होकर आपने जीवनलीला समाप्त की।

आपने निम्न ग्रन्थोका निर्माण किया है :—

(१) जैनेन्द्र व्याकरण— यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसके सूत्र क्या हैं—गागर मे सागर भर दिया है—इस कारण इसका और भी अधिक महत्त्व बढ गया है। इस व्याकरण ग्रन्थ के कारण आपकी भारतीय प्रमुख शाब्दिको में गणना की गई है।

(२) इष्टोपदेश —यह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। सुन्दर एव सरस तथा कल्याणकारी है।

(३) सर्वार्थसिद्धि —तत्त्वार्थ-सूत्र की श्रुतसागर, सुबोधिनी आदि अनेक टीकायें हैं। किन्तु पूज्यपाद कृत 'सर्वार्थसिद्धि' नामक टीका ही अतिप्रसिद्ध, अतिसरल, अति प्रामाणिक एव सक्षिप्त है। श्वेताम्बरों ने इस टीका को अपने ग्रन्थो में बहुश अपनाया है। तत्त्वार्थ-राजवार्तिक के रचयिता अकलंक-

देव ने इनके वचनों का समादर किया है तथा विद्यानन्दी भी उनके प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं।

(४) समाधि शतक— पांच सौ एक श्लोकों में सम्बद्ध यह आध्यात्मिक ग्रन्थ आपकी एक अपूर्व रचना है। संसार से विरक्त होकर आत्मचिंतन में रत होने के लिए यह ग्रन्थ परमोपकारी है। शान्ति सुधा की धारा बहाने वाला यह ग्रन्थ मुमुक्षुओं द्वारा अवश्य ही पढ़ा जाना चाहिए।

(५) सिद्धभक्ति — यह नव पद्यों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें आत्मसिद्धि मार्ग त भगवान के गुणों का सुन्दरत वर्णन किया गया है।

श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, यो भक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभ एवं नन्दीश्वर नामक भक्तिया आपने रची हैं।

आचार्य पूज्यपाद चतुर्मु प्रतिभा के धारी थे। इस भौति संसार में वे इस समय नहीं है किन्तु उनकी अलौकिक अम रचनाएँ उनकी सदा स्मृति दिला रहेगी।

मंगल कार्य के आरम्भ में 'मंगल भगवान् वीरो . ...' के रूप में भगवान महावीर एवं गौतमगण-धरादि के साथ आपका नाम अति विशुद्ध भावना से प्रेरित होकर लिया जाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य का महत्त्व इससे और भी भली भांति जाना जा सकता है कि प्रत्येक दिगम्बरानुयायी व्यक्ति स्वयं को श्री कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा का कहने में अपना गौरव मानता है। पश्चिम के प्रायः सभी विद्वानों को ग्रन्थ निर्माण की प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त हुई है। इनके वचन साक्षात् गणधरदेव के ही वचन माने जाते हैं। यथार्थ में देखा जाय तो आचार्य कुन्दकुन्द ने तीर्थ प्रवर्तकों के प्ररूपित सिद्धांतों को सुरक्षित रख कर मोक्षमार्ग स्थिर रखा है। देवसेनाचार्य ने उनके मोक्ष-पथ प्रदर्शन के सम्बन्ध में लिखा है—

जइ पउमणंदिणाहो,
सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा,
कहं सुमग्गं पयाणंति॥

महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर देव श्रीसीमन्धर स्वामी से प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने) यदि बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?" —दर्शनसार

एक अन्य उल्लेखानुसार कुन्दकुन्दाचार्य को 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने पूर्ण रूपेणादि चर्या० नि येप पालन कर, हितकारी एवं आध्यात्मिक साहित्य का निर्माण और दि० जैन समाज को गौरवान्वित किया है। स्वनिर्मित 'नाटकत्रयो' या 'प्राभृत-त्रयो' में आपने आध्यात्मिक पीयूष की पद-पद पर वह निर्झरिणी प्रवाहित की है, जिसका आस्वादन प्रत्येक आध्यात्मरस के प्रेमी की आत्मा में पुनः आध्यात्मिक संगीत छेड देता है। उसके तार तार पर वह मधुरालाप तरंगित होता है जिसमे परमानन्दमय आत्मा की मुक्ति का पुनीत सन्देश निहित रहता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय का परम-धाम दक्षिण देश ही माना जाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य सदृश रत्न-त्रयधारक विद्वान् को जन्म देने का श्रेय इसी दक्षिण की भूमि को है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य के जन्म के विषय में हमे दो दन्त कथायें प्राप्त हैं, जो कि आचार्यप्रवर के बहुत काल पश्चात् लिखी गई हैं, ऐसा प्रतीत होता है। अतः किसीको पूर्णत सत्य नहीं माना जा सकता।

प्रथम कथा के अनुसार ये भरत खण्ड के दक्षिण देश में पिदडनाडु जिले के कुरुमराई नगर में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम श्रीमान् एव माता का नाम श्रीमती था। इन्होने ग्वाल के रूप मे दावानल से निर्लिप्त शास्त्र की सुरक्षा कर मुनिराज को शास्त्रदान दिया था। जिसके प्रभाव से वे ग्वाला की जीविका को छोड़ व्यापारी निःसन्तान दम्पति के घर कुन्दकुन्दाचार्य के रूप में पैदा हुए थे। (विशेप जानकारी के लिये प्रो० चक्रवर्ती की पंचास्तिकाय की प्रस्तावना मे देखियेगा।)

द्वितीय कथा जिसका प० नाथूरामजी प्रेमी ने 'ज्ञान-प्रबोध' नामक ग्रन्थ के आधार पर उल्लेख किया है, उसी के अनुसार आप मालव देश के करापुर नामक कुन्द श्रेष्ठी नाम के व्यापारी एव उसकी प्रियतमा कुन्दलता के पुत्र सिद्ध होते है।

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य जब पालने मे झूलते थे तभी से उनकी आत्मा को उनकी माँ अपने सुमधुर गीतो द्वारा आध्यात्मिक रस से सिंचित किया करती थी। वे उन्हे झुलाते हुए गाती थी।

'शुद्धो ऽसि बुद्धो ऽसि निरजनोऽसि,
संसारमाया—परिवर्जितो ऽसि।

अतः श्री कुन्दकुन्दाचार्य बचपन से ही तीक्ष्णबुद्धि एवं विरक्तबुद्धि युक्त थे। उनकी विकसित विलक्षण स्मरणशक्ति, मनन, चिन्तन, ग्रन्थनिर्माण एव विषय प्रतिपादन की शक्ति को उनके रचित ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जब आप ११ वर्ष के बालक थे तब आपने आचार्य जिनचन्द्रजी का उपदेश सुना था। उसका

आपके हृदय पर गहरा प्रभाव पडा कि आप उनके शिष्य होकर उन्हीं के साथ रहने तक लगे थे। फल-स्वरूप आप तैतीस वर्षकी अवस्था में आचार्य हो गये थ।

आप कठिन तपश्चर्या में निरत रहा करते थे स्वय अनेकानेक ऋद्धियां आपके वशीभूत थीं। आप का लक्ष्य ऋद्धियों-सिद्धियाँ प्राप्त करने का नही था। आप तपश्चर्या द्वारा जैनधर्म के प्रचार एव प्रसार करने की प्रबलशक्ति को प्राप्त करने के निमित्त इतनी कडी साधना को साध रहे थे। अत· इद्रियो एव मन के निग्रह से सम्पूर्ण शक्तियों का सचय कर इस कार्य में जुट गये। उन्होंने अपनी बुद्धि, ज्ञान एव प्रतिभा की सम्पन्नता से आध्यात्म-सुधा का कलश प्राप्त कर लिया और आत्म-शाँति को प्राप्तकर एक अमर स्रोत बहा दिया। जिससे आज के भौतिक वातावरण मे लिप्त ससार शाँति एव सन्तोप की कामना अब भी पूर्ण कर सकता है।

चिन्तन एव तपश्चर्या में आप इतने आगे बढ चुके थे कि साक्षात् श्रीमन्धर स्वामी के दर्शन एव एक सप्ताह पर्यन्त शका समाधान सम्मति के लिए विदेह-क्षेत्र को जाने में भी आप सफल हुए थे। वहाँ से लौटकर प्राप्त ज्ञान का आपने खूब प्रसार किया था। कुछ काल के पश्चात् वे गिरनारजी की यात्रा करने गये थे। वहाँ पर श्वेताम्बर जैनो से आपका वाद-विवाद हुआ। जिसमे आप ने ब्राह्मी देवता की स्वीकारता पूर्वक दिगम्बर मत की प्राचीनता सिद्ध की थी। आचार्य शुभचन्द्र ने भी इस घटना का उल्लेख पाण्डव-पुराण मे किया है।

विदेह क्षेत्र जाते समय आचार्य श्री की पिच्छिका मार्ग में ही गिर जाने से आपको गृद्ध-पक्षी क परो की पिच्छिका धारण करना पडी थी। अतः आप गृद्धपिच्छाचार्य के नाम से विश्रुत हुए तथा विदेह से आने पर आप सिद्धान्त के अध्ययन में इतने रत हो गये कि तन और समय की सुध-बुध भी खो बैठे। अध्ययन की तन्मयता में गर्दन झुकाये रहने से आपकी

ग्रीवा टेडी हो गई थी। अतः आप वक्रग्रीव के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

"बोधप्राभृत ग्रन्थ के अन्त में आपने स्वय को द्वादशाग ग्रन्थो के ज्ञाता तथा चतुर्दशपूर्वो के विपुलप्रसारक गमक गुरु श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु का शिष्य प्रगट किया है। अत आपका जन्म ईस्वी सन १ के लगभग का ज्ञात होता है। पट्टावलियो के आधार पर जैनों मे परम्परागत मान्यता यह है कि कुन्दकुन्दाचार्य इ० स० से पूर्व १ली सदी मे तेतीस वर्ष की आयु में आचार्य पद पर स्थित हुए थे। अतः १ वीं सदी में ही आपका जन्म मानना उचित है। "मरकरा के ताम्रपत्रो के आधार पर आपका समय पीछे से पीछे तीसरी शताब्दि का मध्य भाग सिद्ध होता है।"

—कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राणी मात्र के अपने और पराये के भेद भाव को मिटाया। साथ ही साथ समझाया कि ससार मे जीव स्वयं कर्त्ता और भोक्ता है। दुख का मूल है पर को निज मानना। अतः भेदविज्ञान एक पैनी छुरी है इसका आश्रय लेकर कर्म और चेतन को इस प्रकार भिन्न करदो कि सदा के लिए भिन्न ही हो जाएँ।

आपने अष्टपाहुड, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार और पञ्चास्ति काय इन पाँच रत्न ग्रन्थो की रचना की। आपने अपना समय केवल ज्ञानार्जन तत्त्वचिन्तन, ध्यान एव मनन में ही लगाया। जैनागम का जीवन पर्यन्त प्रचार एवं प्रसार किया, योगनिरत होकर ४२ वर्ष की आयु मे आपने अपनी जीवन लीला समाप्त की। किन्तु ज्ञानालोक मे आप प्रज्वलित नक्षत्र की भाँति चमकते रहे है और चमकते रहेगे। आपके सम्बन्ध मे कविवर वृन्दावन की निम्न पक्तियां बड़ी ही सुन्दरता पूर्वक व्यक्त हुई है—

विशुद्ध बुद्धि वृद्धिदा, प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा।
हुए हैं, न होहिगे, मुनीन्द्र कुन्दकुन्द से॥

* श्री अकलङ्कदेव *

'किं वाद्यो भगवानमेय महिमा, देवो ऽकलङ्कः कलौ ।
काले यो जनतासु धर्मनिहितो, देवो ऽकलको जिनः ॥

'इस कलिकाल में देव अकलक से विवाद करने के लिए कौन समर्थ है ? उन भगवान अकलक का ज्ञान अपरिमित है। वे देवतुल्य एव निजात्म रस पान करने में निरत है।'

जैन समाज का ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसने अकलक देव का नाम न सुना हो। प्रत्येक बालक स्वर भरता हुआ मिलेगा 'अकलक सा दुलारा स्वामी मुझे बनाना। उन्हें एक आदर्श एव महान पुरुष मानकर उनका नाम बड़ी श्रद्धा एव भक्ति से लिया जाता है। आपने अपनी प्रखर प्रतिभा के द्वारा जिनशासन का महान प्रचार किया एवं बौद्धो के मत का अपनी अकाट्य युक्तियो और तर्कों द्वारा निरसन कर जैनपताका को दिशाओं मे फहराया था।

न्याय विषय में आपकी तीव्र गति थी जिसके फल स्वरूप आपने दिग्विजय का डका बजाकर जिनधर्म का महत्त्व प्रकाशन किया था। आप न्याय शास्त्र के ही ज्ञाता न थे, किन्तु दर्शन के भी अपूर्व वेत्ता थे।

आप लघुहव्व' नामक राजा के पुत्र थे। भट्ट आपकी उपाधि थी। आपका जन्म स्थान दक्षिण भारत के मान्यखेट नगर के निकट मानना चाहिये। वह स्थान काची (काजीवरम्) अनुमानित किया जाता है। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपको अध्ययन की महती अभिलाषा थी, किन्तु उस समय आजकल के समान अध्ययन की सुविधा नहीं थी। आपने कष्ट झेलने के लिए अपना सीना खोल दिया तथा डटकर उनका मुकाबला किया। आपने स्वय को बौद्ध बतला कर 'पोनतम' के विशाल बौद्ध विद्यालय मे अध्ययन किया और अद्वितीय विद्वान् हो गये।

धर्मप्रचारक व्रती अकलंक देव धर्म पर मर मिटने के लिए तपस्वी बन गये एव शीघ्र ही आचार्य पदासीन हुये—

आप जैनन्याय के व्यवस्थापक एव दर्शनशास्त्र मे असाधारण पडित थे। आपकी दार्शनिक कृतियों का अध्ययन करने से पद-पद पर आपकी प्रतिभा का ज्ञान होता है। उनमे स्वमत संस्थापन के साथ ही साथ अकाट्य युक्तियो द्वारा परमत का खण्डन भी किया गया है। आपके ग्रन्थो की शैली अत्यन्त गूढ, सक्षिप्त, अर्थबाहुल्य-युक्त एव सूत्रात्मक है।

अकलङ्क देव का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी निश्चित किया जाता है। वि० सं० ७०० में आपका बौद्धो के साथ महान् विवाद हुआ था। निम्न श्लोक से हमें इसका ज्ञान होता है:—

> विक्रमार्क शकाब्दीय—
> शत - सप्तप्रमा — जुपि।
> काले ऽकलङ्कयतिनो,
> बौद्धै र्वादो महानभूत्॥

प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् श्री जिनदास गणी महत्तर ने अपने ग्रन्थ नन्दिसूत्र की चूर्णि में अकलक देव रचित 'सिद्धि विनिश्चय' का बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है। जिसका रचनाकाल शक संवत ५९८ अर्थात् वि० स० ७३३ है। उसमे लिखा है:—

> शकराजीयेपुः पञ्चसु वर्षशतेषु
> व्यतीतेषु अष्टनवतिषु नन्द्ययन
> चूर्णि. समाप्ता।

अतः अकलङ्क का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी सुनिश्चित है।

अकलंक देव के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। उनमें से १-२ कथाएँ यहा पर दे रहे हैं।

मान्यखेट नगर में राजा शुभतुग राज्य करते थे। आपके पुरुषोत्तम नामक एक मन्त्री था। आपकी रानी का नाम पद्मावती था। उसके दो पुत्र हुये—अकलंक और निकलक।

एक वार आष्टाह्निका पर्व मे राजा के मंत्री महोदय श्री रविगुप्त नामक यतिराज के दर्शनार्थ गये। मुनिराज ने उन्हे आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत दिया और दोनो

वालको के लिए भी मन्त्री के कहने से ब्रह्मचर्य प्रतिमा दी। युवास्था मे उनके समक्ष विवाह कराने का प्रस्ताव रखा गया, किन्तु उन्होने उसे अस्वीकार कर दिया, एव दोनों महावोधि बौद्ध विद्यालय में प्रविष्ट होकर बौद्ध ग्रन्थो का अध्ययन करने लगे।

एक दिन गुरु जी छात्रों को सप्तभङ्गी का सिद्धान्त समझा रहे थे किन्तु पाठ अशुद्ध होने से वे समझा न सके। गुरुजी की अनुपस्थिति में अकलक ने पाठ शुद्ध कर दिया। अतः अकलक पर उन्हे जैन होने का सन्देह हुआ। जैन सिद्ध हो जाने पर उन्हे कारागृह में वन्द कर दिया। किन्तु वे दोनों अपने सफल प्रयत्नो से रात्रि मे जेल से भाग निकले। प्रातः पता लगने पर उन्हे पकडने के लिए चारो दिशाओ में सिपाही भेजे गये।

पीछा करने वाले सिपाहियो की अश्वपाद ध्वनि ने अकलक और निकलक को मौत का सन्देश दिया। अकलक निकट के तालाब में कूद पड़े और कमलपत्र के नीचे छिपकर प्राणो की रक्षा की। निकलङ्क को भागता देख एक धोबी उनके साथ हो गया। सिपाहियो ने पास आकर उन दोनों का वध कर डाला।

कलिंगदेशान्तर्गत रत्नसचयपुर में हिमशीतल नामक राजा थे। उनकी रानी मदनसुन्दरी जैनधर्म की अत्यन्त भक्त थी। वह जैन रथ निकलवाना चाहती थी किन्तु बौद्ध गुरु ने कहा जब तक कोई जैन विद्वान मुझे शास्त्र में पराजित नहीं कर देगा तवतक जैन रथ नहीं निकाला जा सकता।' अत. रानी रथ न निकलवा सकी।

अकलक को भी इसका पता चला और वे राजा की सभा मे गये तथा बौद्ध गुरु से शास्त्रार्थ करने को कहा। यह शास्त्रार्थ परदे के अन्दर से हो रहा था और छह मास तक चलता रहा। अकलक को इस पर बडा आश्चर्य हुआ। रहस्य यह था कि परदे में घड़े मे बैठी बौद्धदेवी तारा शास्त्रार्थ कर रही थी। रहस्य ज्ञात कर अकलक ने घड़ा फोड़ डाला,

तारादेवी भाग गई और अकलंक विजयी हुये। तब जैन रथ बड़ी धूमधाम से निकाला गया।

कन्नड़ ग्रन्थ 'राजवली-कथे' के रचयिता देवचन्द्र जी हैं। उसमे अकलंक का चरित्र वर्णित किया गया है। जिसका सार राइस साहिब ने निम्न प्रकार लिखा है—

जिस समय काञ्ची में बौद्धो ने जैनधर्म की प्रगति को बिलकुल रोक दिया था, उस समय जिनदास नामक जैन ब्राह्मण की जिनमती पत्नी से अकलङ्क और निकलंक पुत्र हुये। वहाँ पर उनके सम्प्रदाय का कोई पढाने वाला न होने के कारण दोनो ने भगवद्दास नामक बौद्ध गुरु से गुप्त रीति से अध्ययन प्रारम्भ किया। उन्होंने अपनी असाधारण गति से उन्नति की जिससे गुरु को सन्देह हो गया और उसने यह जानने का निश्चय किया कि वे कौन है ?

एक रात्रि को सोते समय गुरु ने बुद्ध का दात उनकी छाती पर रख दिया इससे बालक 'जिनबुद्ध' कहते हुये एकदम उठ खड़े हुये। इससे गुरु को मालूम होगया कि ये जैन हैं। तब उनके मारने का निश्चय किया। वे दोनो भाग निकले। अकलंक धोबी की सहायता से उसकी गठरी मे छिपकर बच गये और निकलंक मारे गये।

अकलंक ने दीक्षा लेकर सुधापुर के देशीयगणका आचार्य पद सुशोभित किया। अनेक मतो के आचार्य, बौद्धो स वादविवाद में हारकर अकलंकदेव के पास आए। अकलंक देव ने बौद्धो पर विजय पाने का निश्चय किया और उन्हें वाद में हरा दिया।

कांची के बौद्धो ने हिमशीतल की सभा में जैनियो से इस शर्त पर वादविवाद किया कि हारने पर उस सम्प्रदाय के सभी मनुष्य कोल्हू में पिलवा दिये जायेंगे, बौद्धो ने परदे की ओट में तारा का मृत्कुभ रक्खा और उससे तारादेवी का आह्वान कर अकलंक देव के प्रश्नो का उत्तर देने को कहा। यह शास्त्रार्थ १७ दिन तक चला।

अकलक को कुष्मांडिनी देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा—"तुम अपने प्रश्नों को प्रकारान्तर करने पर जीत जाओगे।" अकलक ने ऐसा ही किया और वे विजयी हुये। राजा हिमशीतल को बौद्धों के प्रपच का पता लगा। उसने बौद्धों को कोल्हू में पिलवाने की आज्ञा दी। परन्तु अकलक देव ने ऐसा नहीं करने दिया। तब राजा ने बौद्धों को अपने देश से निकाल दिया और वे समस्त बौद्ध सीलोन के नगर 'कैंडी' में चले गये।

उपर्युक्त कथाओ से तो यही निश्चित होता है कि अकलक देव एक महान् दिग्विजयी आचार्य एव प्रभावक वक्ता तथा न्यायशास्त्र और जिन सिद्धान्त के अभूतपूर्व ज्ञाता थे। आपने अपनी प्रबल अलौकिक शक्ति के द्वारा भारत के कोने-कोने मे जनधर्म का डका बजा दिया। आपने राजा साहसतुग के राजदरबार में बौद्धो को बुरी तरह पराजित किया तथा हिमशीतल राजा की सभा में उन्हे जीतकर जैनधर्म के विशिष्ट महत्त्व को प्रकाशित किया था और जिनधर्म की अपूर्व प्रभावना की थी। न्याय और दर्शन के विशाल एव गभीर, तलस्पर्शी-ज्ञान ने आपकी कीति मे चार चाद लगा दिये थे। जिसके कारण आपको भट्ट की उपाधि दीगई और अनेक उत्तमोत्तम आदरणीय विशेषणों से सम्बोधित किया गया। आ० विद्यानन्दि ने आपको 'सकल-तार्किक-चूडामणि' के नाम से स्मरण किया है।

अकलक देव जैन न्याय में प्रबन्धात्मकता लाए तथा उसे सुसम्बद्ध किया। अपने मत के प्रतिपादन के साथही साथ परमत के निरसन पूर्वक अपनी युक्तियाँ को अकाट्य बनाए रखा। आपसे प्रभावित होकर हरिभद्रादि उत्तर-वर्ती आचार्यों ने अकलक न्याय का सम्मान पूर्वक उल्लेख ही नही किया अपितु जिनदास गणी महत्तर जैसे विद्वानो ने भी आपके 'सिद्धिविनिश्चय' ग्रन्थ के देखने की प्रेरणा की है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि आप

कितने महान् थे और आपकी कृतियाँ भी कितनी महान् है।

वर्तमान में आपके निम्न ग्रन्थ प्राप्त है—लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, अष्टशती, प्रमाणसग्रह, तत्त्वार्थराजवार्तिक भाष्य, स्वरूपसम्बोधन, अकलक स्तोत्र आदि—

अकलक की उक्त रचनाओं में कुछ टीकाएँ है और कुछ मौलिक ग्रन्थ हैं। अष्टशती और तत्त्वार्थ राजवार्तिक भाष्य ये दो टीका ग्रन्थ है शेष मौलिक रचनाएँ हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि अकलक ने जैनधर्म की महान सेवा की है। आप जैनधर्म के लिए एक वरदान थे। आपका व्यक्तित्व आपकी कृतियों मे स्पष्ट है और आपकी कृतियाँ अमर हैं। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सदैव अजर अमर रहेगे।

* श्री शाकटायनाचार्य *

राष्ट्रकूटवशीय राजा अमोघवर्ष के राज्यकाल में शाकटायन नामक एक प्रसिद्ध जैन वैयाकरण होगये हैं। आप व्याकरण शास्त्र के महान यशस्वी विद्वान् थे। आपके द्वारा रचित ग्रन्थ आपकी प्रतिभा, विद्वत्ता एव कुशल तार्किकता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आप यापनीय संघ के आचार्य थे। यापनीय सघ दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायो को जोड़ने के लिए मानो एक कड़ी था। इसका बाह्य आचार बहुत कुछ अंशो में दिगम्बरो से मेल रखता था किन्तु ये श्वेताम्बर आगमों को भी आदर एव सम्मान की दृष्टि से देखते थे। यह सम्प्रदाय बादमे नष्ट होगया। आपके गुरु भी यापनीय सघ के आचार्य थे। उन का नाम अर्ककीर्ति था।

राजा अमोघवर्ष का राज्यकाल ईस्वी ८१४ से ८७७ तक माना जाता है। जैन विद्वानो एवं जैनधर्म के प्रति आपकी विशेष सहानुभूति थी और उसके प्रति आपका सम्मान रहा है। श्रीशाकटायनाचार्य जी को भी उनका आश्रय प्राप्त होगा ऐसा प्रतीत होता है।

इसी कारण आपने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ शाकटायन व्याकरण पर अमोघवर्ष के नाम पर अमोघवृत्ति नामक टीका लिखी है। अतः आपका समय लगभग ई० ८००—८७७ तक समझना चाहिये।

आपके अकाट्य तर्कों का अच्छे-अच्छे विद्वानो ने लोहा माना है तथा आपके शब्दशास्त्र की प्रशसा की है। आपको शास्त्रो एव सिद्धान्तो का भी अगाध ज्ञान था। आपने स्त्रीमुक्ति एव केवलि मुक्ति का समर्थन किया है तथा उन्हें तर्क से सिद्ध किया है। जिनका खण्डन न्यायकुमुदचन्द्र एव प्रमेय-कमल मार्तण्ड ने बडी ही कुशलता से किया है।

अनेक आचार्यो ने आपको 'श्रुतकेवली देशीयाचार्य' के नाम से सम्बोधित किया है। किसी ने आपकी मुनीन्द्र, जिनेश्वर आदि नाम देकर प्रशसा की है और चिदानन्द कवि ने आपका श्रुतसागरके मथनसे व्याकरणामृत के लिये 'जयवन्त' शब्द से अभिवादन किया है।

आपने अनेक महान् ग्रन्थो का प्रणयन किया है। जिन्होने विश्व के व्याकरण एव साहित्य की न्यूनता की पूर्ति में विशेष सहयोग प्रदान किया है।

(१) शब्दानुशासन ग्रथ पर आपकी अमोघवृत्ति, शाकटायनन्यास, चिन्तामणि टीका, मणिप्रकाशिका, प्रक्रियासग्रह, शाकटायन टीका, रूपसिद्धि आदि ७ टीकाएँ उपलब्ध हैं। यह व्याकरण का महान ग्रन्थ है।

(२) अमोघवृत्ति–स्त्रीमुक्ति एव केवलि कहालावार पर ३४ तर्कपूर्ण टीकाएँ हैं।

वर्तमान में यद्यपि आप हमारे मध्य नहीं हैं, किन्तु आपकी अलौकिक रचनाएँ अमर हैं जो आपकी इस कमी को पूर्ण करने में सर्वथा योग्य हैं।

* आचार्य जिनसेन *

आप कहां के निवासी, किसके सुपुत्र और किस जाति के थे यह अभी तक प्राय: अविदित है। परन्तु आपके ग्रन्थो में बकापुर, वटग्राम और चित्रकूट का उल्लेख आता है, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये कर्णाटक प्रान्त के रहने वाले होगे। बकापुर इस समय कर्णाटक प्रान्त के धारवाड़ जिले मे हैं।

आप मूलसंघ के उस 'पञ्चस्तूप' नामक अन्वय में हुये है जो आगे चलकर सेनान्वय या सेनसङ्घ नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

अभी तक के अनुसन्धान से आपके गुरुवश की परम्परा आर्य चन्द्रसेन तक पहुँच सकी है। अर्थात् चन्द्रसेन के शिष्य आर्यनन्दी, आर्यनन्दी के वीरसेन, वीरसेन से जिनसेन, जिनसेन के गुणभद्र और गुणभद्र के शिष्य लोकसेन थे। इस प्रकार आचार्य जिनसेन वीरसेनस्वामीके शिष्य थे। आपका बाल्यकाल निरन्तर ज्ञान की आराधना में व्यतीत हुआ।

समय—हरिवशपुराण के प्रथमसर्ग के पद्य ३९-४०-४१ में जिनसेनाचार्य के पार्श्वाभ्युदय और वर्धमानपुराण की पर्याप्त प्रशंसा की गई है। हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में हरिवशपुराण की रचनाका काल शक स० ७०५ लिखा है। दश बारह हजार श्लोक प्रमाण हरिवश पुराण की रचना में कम से कम ५ वर्ष अवश्य लगे होगे। इस प्रकार हरिवंशपुराण की रचना का प्रारम्भकाल शक सवत ७०० सिद्ध होता है। ह० पु० की रचना प्रारम्भ करते समय आदिपुराण के कर्त्ता जिनसेन की आयु कम से कम २५ वर्ष अवश्य होगी। इस प्रकार शकसम्वत ७०० में से यह २५ वर्ष कम कर देने से जिनसेन का जन्म ६७५ शक सम्वत के लगभग सिद्ध होता है।

जयधवला टीका की प्रशस्ति से यह विदित होता है कि जिनसेन ने अपने गुरुदेव वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रारब्ध 'वीरसेनीया' टीका शकसम्वत ७५७ फाल्गुन सुदी १०

के पूर्वाह्न में पूर्ण की थी। इससे यह मानने में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि जिनसेन स्वामी ७५७ शक सम्वत तक विद्यमान थे।

आपके ज्ञानकोशमें न शब्दों की कमी थी, न अर्थो की। इसलिये आप किसी भी वस्तु का विस्तार से वर्णन करने मे सिद्धहस्त थे। आपने अपने प्रारम्भिक जीवन में पार्श्वाभ्युदय और वर्धमानपुराण की हृदयहारिणी रचना की। पश्चात अपने गुरु वीरसेन के दिवङ्गत होने पर उनके द्वारा प्रारब्ध सिद्धात ग्रन्थो की अधूरी टीका ६० हजार श्लोक प्रमाण रची। इसके बाद आपने आदिपुराण की स्वतन्त्र रचना की। यही आपकी पिछली रचना है।

आदिपुराण के प्रारम्भ से ४२ पर्व और तेतालीसवे पर्वके ३ श्लोक आपकी सुवर्ण लेखिनी से लिखे जा सके कि असमयमे ही आपकी आयु समाप्त हो गई और आपका यह कार्य अधूरा ही रह गया। आपने आदिपुराण कब प्रारम्भ किया और कब समाप्त किया यह विदित नहीं होता। इसलिये यह नही कहा जासकता कि आपने अपने अस्तित्व से इस भूतल को कब तक अलंकृत किया।

परन्तु वीरसेनी टीकाके समाप्त होते ही यदि महापुराण की रचना शुरू हो गई हो और चूकि उस समय श्री जिनसेन स्वामी की अवस्था ८० वर्ष के ऊपर ही हो चुकी होगी अतः इस १० हजार श्लोक की रचना में यदि १० या ५ वर्षों का ही समय लगा हो तो शकसम्वत ७७० या ७६५ तक जिनसेन स्वामी का अस्तित्व मानने में आपत्ति नहीं दिखती। इस प्रकार जिनसेन स्वामी लगभग ७०,७५ वर्ष तक इस भूतल पर जीवित रहे।

गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण की प्रशस्ति मे लिखा है कि उदयाचल के तट से सूर्य के उदय के समान वीरसेन स्वामी से जिनसेन का उदय हुआ। इस प्रकार वीरसेन स्वामी को आपका गुरु मानना निर्बाध है।

जयधवला की प्रशस्ति में श्लोक नं० २७, २८, २९ मे आचार्य जिनसेन ने अपना परिचय बडी ही सुन्दरता से अङ्कित किया है।

आचार्य जिनसेन सिद्धान्तज्ञ तो थे ही, साथ ही उच्चकोटि के कवि भी थे। आप की कविता मे ओज है, माधुर्य है, प्रसाद है, प्रवाह है, शैली है, रस है, अलंकार है। आप यथार्थ वक्ता थे। आपने स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि दूसरा सतुष्ट हो या न हो, कवि को अपना कर्त्तव्य करना चाहिये। दूसरे की आराधना से भला नहीं होगा किन्तु समीचीन मार्ग का उपदेश देने से ही भला होगा।

अभी तक पार्श्वाभ्युदय, वर्धमानपुराण, जयधवलाटीका और आदिपुराण ये चार ग्रन्थ आपके बनाये प्रमाणित हुये हैं।

पार्श्वाभ्युदय-की रचना अपने सधर्मी विजयसेन की प्रेरणा से कालिदास के खण्ड काव्य मेघ दूत की समस्यापूर्ति रूप से है। पार्श्वाभ्युदय में मन्दाक्रान्ता वृत्त के ३६४ छन्द है, जिनमे सम्पूर्ण मेघदूत अन्तर्विलीन हो गया है। इस पार्श्वाभ्युदय की योगिराट् पण्डिताचार्य ने तथा श्री प्रो० के० बी० पाठकने भूरि-भूरि प्रशसा की है।

वर्धमानपुराण-आपकी द्वितीय रचना है। यह अभी तक अप्रकाशित और अविदित है। परन्तु इसका उल्लेख हरिवशपुराण में मिलता है।

जयधवला टीका—यह २० हजार श्लोक प्रमाण लिखी जाने पर भी स्वर्गवास होने के कारण अधूरी वीरसेनाचार्य की जयधवला टीका का उन्ही की शैली का ४० हजार श्लोक प्रमाण शेप भाग है।

आदिपुराण—यह महापुराण का आदिभाग है। इसका शेपभाग उत्तरपुराण कहा जाता है। जो १६२० पद्यों मे जिनसेनाचार्य के शिष्य भदन्त गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित है।
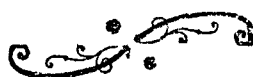
* नाट्यकार हस्तिमल्ल *

दिगम्बर जैन साहित्य में हस्तिमल्ल का एक प्रमुख स्थान है। क्योंकि अभी तक के अनुसन्धान से सुनिश्चित है कि जैन रूपक या नाटक इनके सिवाय अन्य किसी के नहीं मिले हैं। केवल मोहपराजय नामक प्रतीक नाटक के लेखक कवि यशपाल अवश्य होगये हैं।

श्रव्य काव्य तो बहुत लिखे गये परन्तु दृश्य काव्य की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। हस्तिमल्ल ने साहित्य के इस अङ्ग को खूब पुष्ट किया और अनेक सुन्दर नाटक लिखे।

हस्तिमल्ल के पिता का नाम गोविन्दभट्ट था। वे वत्सगोत्री ब्राह्मण और दाक्षिणात्य थे। श्रीस्वामी समन्तभद्र के देवागम को सुन कर इनको सम्यक्त्व हुआ था। गोविन्दभट्ट के स्वर्णयक्षी नामक देवी के प्रसाद से ६ पुत्र हुये—श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्धमान।

हस्तिमल्ल अपने पिता के पाँचवें पुत्र थे। छहो के छहों पुत्र कवीश्वर थे। इस प्रकार यह कुटुम्ब अतिशय सुशिक्षित और गुणी था।

सरस्वतीस्वयम्वर - वल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्तिरत्नाकर आदि हस्तिमल्ल के विरुद थे। आपके बडे भाई सत्यवाक्य ने आपको 'कविसाम्राज्य लक्ष्मीपति' कह कर आपकी सूक्तियों की बहुत प्रशसा की है। राजावली कथा के कर्त्ता ने आपको उभयभाषा कविचक्रवर्ती लिखा है। कनडी आदिपुराण की पुष्पिका मे आपने अपने को स्वय भी उभयभाषा चक्रवर्ती लिखा है।

ब्रह्मसूरि, हस्तिमल्ल के ही वशज थे। इन्होने हस्तिमल्ल के पुत्र पौत्रादिको का वर्णन अपने प्रतिष्ठा सारोद्धार में किया है। वे लिखते हैं कि पाण्ड्य देशमें गुडिपत्तन के शासक पाण्ड्य नरेन्द्र थे। वहीं पर गोविंदभट्ट रहते थे। उनके पुत्र का नाम हस्तिमल्ल और पौत्र का

म पार्श्व पण्डित था। ये पार्श्व
ण्डित छत्रत्रयपुरी राजधानी के
य्सल देश में जा बसे थे।

पार्श्व पण्डित के चन्द्रप,
न्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन
त्र थे। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र
थे और विजयेन्द्र के पुत्र ब्रह्मसूरि
थे। हस्तिमल्ल गृहस्थ थे।

हस्तिमल्ल का असली नाम
या था इसका पता नहीं चलता।
ह नाम तो उन्हें सरण्यापुर में
क मत्त हाथी को वश करने के
पलक्ष्य में राजा पाण्ड्य के द्वारा
ाप्त हुआ था। उस समय
रण्यापुर की राजसभामें आपका
ैकड़ो प्रशसावाक्यो से सत्कार
किया गया था। जिसका विशद
र्णन हस्तिमल्ल ने अपने
अजनापवनंज और सुभद्राहरण
ाटक मे किया है। साथ ही यह
ी बतलाया है कि कोई धूर्त, जैन
ुनि का रूप धारण करके आया
ा उसे भी हस्तिमल्ल ने परास्त
किया था।

मूलनिवास—ब्रह्मसूरि ने गोवि-
न्दभट्ट का निवासस्थान गुडिपत्तन
बतलाया है और श्री पं० के० भुज-
बलि शास्त्री के अनुसार यह स्थान
तजौर का दीपगुड़ि नामक स्थान
है, जो पाण्ड्य देशमें है। ब्रह्मसूरि
के बतलाये हुये गुडिपत्तन का ही
उल्लेख हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव की
प्रशस्ति में द्वीपगुडि नाम से किया
है। यह वही द्वीपंगुडि है जहां
रामचन्द्र जी के पुत्र लव
और कुश द्वारा वृपभ जिनमन्दिर
निर्मित बतलाया गया है।

समय—अय्यपार्य नामक विद्वान्
ने अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय
नामक प्रतिष्ठापाठ मे लिखा है
कि मैंने यह ग्रन्थ वसुनन्दि,
इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्ति-
मल्ल आदि की रचनाओ का सार
लेकर लिखा है। और उक्त ग्रन्थ
शकसवत १२४१ वि० सं० १३७६
मे समाप्त हुआ था। अतएव हस्ति-
मल्ल विक्रमसवत १३७६ से पहिले
हुये हैं या अय्यपार्य के समका-
लीन है।

ब्रह्मसूरि ने जो अपनी वंश
परम्परा दी है, उसके अनुसार
हस्तिमल्ल उनके पितामह के पिता-

मह थे। यदि एक-एक पीढी के पच्चीस-पच्चीस वर्ष गिन लिये जाय तो हस्तिमल्ल उनसे लगभग सौ वर्ष पहले के हैं। और श्री० प० जुगलकिशोर जी मुख्त्यार, ब्रह्मसूरि को विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दि का विद्वान मानते है, अतएव हस्तिमल्ल को विक्रम की चौदहवीं शताब्दि का विद्वान मानना चाहिये।

कर्नाटककविचरित्र के कर्ता आ० नरसिंहाचार्य ने हस्तिमल्ल का समय ई० सन् १२९० अर्थात् विक्रम सवत १३४७ निश्चित किया है और यह ठीक मालूम होता है।

ग्रन्थ—हस्तिमल्ल एक यशस्वी नाटककार थे। आपके अभी तक चार नाटक प्राप्त हुये हैं—विक्रान्त कौरव, मैथिलीकल्याण, अजनापवन जय और सुभद्राहरण। जो श्री० मा० दि० जैन ग्रन्थमाला से चारो ही प्रकाशित हो चुके हैं।

इसके सिवाय—आपके उदयन राज, भरतराज, अर्जुनराज और मेघेश्वर इन चार नाटको का भी आपर्ट साहब की लिस्ट १-२ सन् १८८०-८५ मे उल्लेख मिलता है।

प्रतिष्ठातिलक नामक एक औ[र] ग्रन्थ आरा के जैनसिद्धान्त भव[न] में है। यद्यपि इस ग्रन्थ में क[ही] हस्तिमल्ल का नाम नहीं है परन्[तु] अय्यपार्य ने अपने जिनेन्द्र कल्याण[ा]भ्युदय मे जिन जिन प्रतिष्ठापाठो[के] सार लेकर अपना ग्रन्थ रचने [का] उल्लेख किया है, उसमें हस्तिमल्[ल] भी है। अतः निश्चय से हस्तिमल्[ल] का एक प्रतिष्ठापाठ है, वा वह यही है।

आदिपुराण (पुरुचरित) औ[र] श्रीपुराण नाम के दो ग्रन्[थ] कनडी भाषा में भी हस्तिमल्ल [के] बनाये हुये उपलब्ध है। सस्कृत [के] समान कनडी भाषा पर भी आपक[ा] अधिकार था। और शायद इस[ी] कारण आप उभयभाषा चक्रवर्ती कह[े] लाते थे। आपने अपने चारो नाट[क] लिख कर जैन सस्कृत साहित्य [के] एक बड़े अभाव की पूर्ति की है।

आभार—यह लेख श्री० मा[०] दि० जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित अजना पवनजय नाटककी भूमिका के आधार पर लिखा गयाहै। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। विशेष जिज्ञासु वहां देखें।

* आचार्य गुणभद्र *
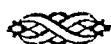
आचार्य गुणभद्र मूलसंघ के 'पंचस्तूप' नामक अन्वय में हुए थे। यही अन्वय कालान्तर मे 'सेनान्वय' नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

आपके लौकिक वंश का कुछ पता नहीं चलता। कि आपने कहाँ निवास कर जन-गण को गौरवान्वित एवं आह्लादित किया? आप किस के पुत्र रत्न थे? आपकी जाति क्या थी? इसका कुछ भी पता नहीं है। गुरु परम्परा के अनुसार आपके गुरु दशरथ गुरु एवं जिनसेनाचार्य थे। इसका गुणभद्राचार्य ने स्वरचित उत्तरपुराण की प्रशस्ति में वर्णन किया है। आ० जिनसेन के बाद आप पट्टाधीश हुए और आचार्य पद प्राप्त किया। लोकसेन आपके मुख्य शिष्य थे।

आचार्य प्रवर के स्वरचित ग्रंथो मे उल्लिखित वटग्राम एव बंकापुर आदि से यह प्रतीत होता है कि आप कर्णाटक प्रान्त के रहने वाले हैं। यह बकापुर वही है जहाँ लोकसेन ने उत्तरपुराण का पूजामहोत्सव किया था। इसी प्रान्त की राजधानियो में रह कर आपने ग्रन्थो का निर्माण किया एव जिनशासनकी अपूर्वप्रभावना की।

उत्तरपुराण मे लिखी गई प्रशस्ति के अनुसार आचार्य गुणभद्र जी की सत्ता शक सवत् ८२० माननी चाहिए। वैसे आप विक्रम की ६ वीं शताब्दी के आचार्य थे।

आचार्य गुणभद्र अपने समय के बहुत बड़े विद्वान हुए हैं। आप उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त, पक्षोपवासी, तपस्वी तथा भावलिंगी मुनिराज थे। —"दर्शनसार"

आप श्रद्धालु गुरुभक्त एवं बड़े ही ज्ञानी थे। आपने अपनी भावमालिका को अति सरल एवं सरस भावपूर्ण भाषा में गूंथ कर साहित्यिक जनो को विस्मित कर दिया है। आपने अपनी कृतियो का निर्माण कर साहित्यक क्षेत्र में

में जो योग दिया है उसे भुलाया नहीं जा सकता। काव्यकला का प्रतिदिन विकास कर आपने अपना समस्त जीवन उसी के हेतु अर्पित कर दिया है। काव्य और साहित्य के ज्ञान के साथ-साथ आप सिद्धान्त प्रतिपादन एवं आत्मज्ञानानुभव में अतिकुशल थे। कहा जाता है कि कवि पैदा होते हैं, बनते नहीं, इसके आप प्रत्यक्ष उदाहरण थे। पद-पद पर आपने रसो की वह सरिता प्रवाहित की है, जिसके रसानुभव को निरन्तर आस्वादन करते हुए भी साहित्य-मर्मज्ञ तृप्त नहीं होते।

गुरु जिनसेनाचार्य कृत अर्द्ध महापुराण की पूर्ति कर आपने योग्यतम शिष्य होने एवं प्रकाण्ड विद्वत्ता की सूचना दी है। आप व्याकरणशास्त्रके भी अच्छे विद्वान थे। आपकी रचनायें सुभाषित का पिटारा प्रतीत होती हैं।

जब जिनसेनाचार्य को यह निश्चय हो गया कि अब मेरी जीवनलीला समाप्त होने वाली है और मैं महापुराणको पूर्ण नहीं कर सकूंगा। तब उन्होने अपने दो शिष्यो को बुलाया और कहा कि सामने खड़े शुष्क वृक्ष का काव्य वाणी में वर्णन करो। पहिला बोला—'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' तब दूसरे ने कहा—'नीरसतरुवर विलसति पुरतः' दूसरे शिष्य की वाणी सुन कर गुरु को विश्वास हो गया कि यह योग्य शिष्य महापुराण को पूर्ण कर देगा। यह द्वितीय शिष्य गुणभद्र ही थे।

जिस प्रकार वाणभट्ट के योग्य पुत्र ने कादम्बरी का उत्तरभाग पूर्ण किया था, ठीक उसी प्रकार जिनसेन के योग्य शिष्य ने महा-पुराण का उत्तरभाग पूर्ण किया।

आचार्य गुणभद्र के इस समय निम्न ग्रन्थ प्राप्त हैं—

१ उत्तरपुराण—यह महा-पुराण का उत्तर भाग है। इसमें २३ तीर्थकर, ११ चक्रवर्ती, ६ नारायण ६, बलभद्र और २६ प्रति-नारायण आदि विशिष्ट पुरुषों का वर्णन किया गया है।

यद्यपि यह काव्य अपनी सानी नहीं रखता, किन्तु कुछ चरित्र

अत्यन्त संक्षिप्त कर दिये गये हैं। यत्र तत्र अलंकारों की मधुर ध्वनि एवं रस-प्रवाह के कल-कल नाद से पूर्ण काव्य नादित हो रहा है। उनकी भक्ति-सरिता-जल का जरा पान तो कीजिए! आप स्वय अत्त-यानन्दानुभूति में निमग्न हो जावेंगे।×

ऐसे सुन्दर १०००० श्लोको द्वारा उत्तरपुराणका निर्माण हुआ है।

२ आत्मानुशासन-यह ग्रंथ भर्तृहरि कृत वैराग्यशतक की शैली पर रचा गया है। एक एक श्लोक क्या है हृदय पर जादू का प्रभाव करता है। पढ़ते ही आत्मामें अपूर्व शांति छाजाती है। कुलपद्य २७२हैं

३ जिनदत्तचरित्र-यह अनुष्टुप छन्दमें एक लघुकथा है। कथा सर्वांग सुन्दर और सरस है। ग्रन्थ लघु होने पर भी विशिष्ट गुणो से युक्त है। यह नौ सर्गोमे पूर्ण हुई कथा है।

४ भावसंग्रह - अभी य अप्राप्य है।

× गुरूणामेव माहात्म्यं, यद्यपि स्वादु मद्वचः।
तरूणां हि स्वभावोऽय, यत्फलं स्वादु जायते ॥
निर्यान्ति हृदयाद्वाचो, हृदि मे गुरवः स्थिताः।
ते तत्र संस्करिष्यन्ते, तन्न मेऽत्र परिश्रमः ॥
पुराण-मार्ग - मासाद्य, जिनसेनानुगो ध्रुवम्।
भवाब्धेः पारमिच्छामि, पुराणस्य किमुच्यते ॥

---

* स्वामी वीरसेन *

'श्री वीरसेन इत्यात्त-भट्टारक पृथुप्रथः।
पारदृश्वाधिविश्वानां,साक्षादिव सकेवली।
—जयधवलाप्रशस्ति श्लोक १६

आचार्य वीरसेन अपने समय के एक बहुत बड़े विद्वान थे। आप सिद्धान्त, छन्द, ज्योतिष ए व्याकरणके अपूर्व वेत्ता थे। भर चक्रवर्ती के समान ही आपको प्रथम सिद्धान्त चक्रवर्ती समझ चाहिए। आपको आगमों

इतना विशिष्ट ज्ञान था कि आप की बौद्धिक प्रतिभा को देखकर विद्वान आपको 'श्रुतकेवली' एव 'प्रज्ञाश्रमणो मे श्रेष्ठ' कहते थे। आप साक्षात् सर्वज्ञ सम थे। हरिवश पुराण मे आपको 'कवि-चक्रवर्ती' लिखा गया है।

आप मूलसघ के पचस्तूपान्वय के आचार्य थे। यही सघ पश्चात् सेनसघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। आप आर्यनन्दि के शिष्य एव जिनसेनाचार्य के गुरु थे। आपने चित्रकूट में एलाचार्य के समीप 'पट् खण्डागम' और 'कपायप्राभृत' जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया और उक्त ग्रन्थोंकी विस्तृत टीकाये की।

विक्रम सवत् ८०० के लगभग आपका जन्म हुआ था और वि० सवत् ८८० के लगभग अन्त।

आप सिद्धान्त ग्रन्थों के रहस्य के अपूर्ववेत्ता थे तथा प्रथम सिद्धांत ग्रन्थ पट् खण्डागम में आपकी भारती, भारती आज्ञा के समान अस्खलित थी। आप ज्ञानी थे और सयमी भी। आप प्राचीन पुस्तको के प्रेमी अध्येता थे। आपका ज्ञान एवं प्रतिभा विस्मयकारी थी।

आपने अपना समय पठन-पाठन मे व्यतीत किया और निम्न ग्रन्थों की रचना की:—

[१] धवलाटीका:—यह पट् खण्डागम पर ७२ हजार श्लोक प्रमाण लिखी गई सुन्दर, समलकृत टीका है। इसमे सस्कृत मिश्रित भापा का प्रयोग किया गया है।

[२] जयधवलाटीका—यह श्रीगुणधराचार्य द्वारा रचित कपाय पाहुड की ६० हजार श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका है। प्रारम्भ के २० हजार श्लोक आपने और अन्तिम ४० हजार श्लोक आपके योग्य शिष्य श्री जिनसेनाचार्य ने बनाए हैं।

[३] सिद्धभूपद्धति:—यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख एक ग्रन्थमें गुणभद्राचार्यने किया है।

आपने जिनशासन की महती सेवा की है। आप जैन वाङ्मय के जाज्वल्यमान रत्न हैं। आपका ससार महान् आभारी है।

* महाकवि हरिचन्द्र *

महाकवि हरिचन्द्र एक राज्य-मान्य कुल के भूषण थे। आपके वंश का नाम नोमक था और आप कायस्थ जाति के थे। फिर भी आप दि० जैन मत के अनन्य उपासक और अनुयायी थे।

आपके पिता का नाम आर्द्र-देव और माता का नाम रथ्या था। आप श्री जिनेन्द्रदेव के चरणों के अतिशय भक्त थे। आपके लक्ष्मण नामके एक भाई थे। उनकी भक्ति और शक्ति के प्रभाव से हरिचन्द्र ने शास्त्रसमुद्र को उसी तरह पार किया था जिस तरह लक्ष्मण के सहयोग से राम-चन्द्र जी ने सेतु पार किया था।

आपने किस प्रतिभाशाली गुरु से शिक्षा प्राप्त की यह अविदित है परन्तु इतना अवश्य विदित होता है कि किसी गुरु के प्रसाद से आपकी वाणी निर्मल हुई थी और वे गुरु दि० सम्प्रदाय के थे।

स कर्णपीयूषरसप्रवाहं,
रसध्वनेरध्वनि सार्थवाहः।
श्रीधर्मशर्माभ्युदयाभिधानं,
महाकवि: काव्यमिदं व्यधत्त॥

धर्मशर्माभ्युदय काव्य की प्रशस्ति के उक्त श्लोक नं० ७ से सुनिश्चित है कि धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य आपकी कृति है। इस महाकाव्य की एक प्रतिलिपि संवत् १२८७ की प्राप्त हुई है इसलिये यह निश्चित होता है कि महाकवि हरिचन्द्र उक्त संवत से पूर्व के ही हैं। नेमिनिर्वाण काव्य १२०० संवत् का बना हुआ है। विद्वानों का मत है कि धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य नेमिनिर्वाण काव्य से पहिले का है।

आप प्रतिभाशाली कवि थे। आपकी काव्यकला महाकवि माघादि के समान कोटि की मानी जाती है। काव्य संबंधी रस, रीति, छंद, अलंकार, गुण, दोष आदि प्रत्येक विषय पर आपका पूर्ण अधिकार था। संस्कृत काव्य के सौष्ठव के जिज्ञासु आप के धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य का एक बार अवलोकन अवश्य करें।

इस पुण्य वसुंधरा पर हरिचन्द्र नाम के व्यक्ति दो हुए हैं। *"पदबन्धोज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः। भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते"*। इस पद्य द्वारा हर्ष चरित के प्रारम्भ में बाणभट्ट के द्वारा वर्णित प्रथम हरिचन्द्र तथा विश्वप्रकाश कोष के कर्त्ता महेश्वर के पूर्ववर्ती 'चरकसंहिता' के टीकाकार साहसाङ्क राजा के प्रधान वैद्य दूसरे हरिचन्द्र।

प्रकृत हरिचन्द्र महाकवि इन दोनो में से ही कोई एक थे अथवा कोई तीसरे ही व्यक्ति थे यह अब तक निश्चित नहीं हुआ। किन्तु इस धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य के कर्त्ता महाकवि हरिचन्द्र अपने कवित्व के कौशल्य से माघादि प्राचीन महाकवियो की कोटि में गिने जाते हैं इसलिये आप प्राचीनकवि ही हैं।

कर्पूरमजरी नाटिका मे प्रथम जवनिका के अनन्तर एक जगह विदूषकोक्ति के व्याज से महाकवि राजशेखर कवि ने महाकवि हरिचन्द्र का स्मरण किया है। इससे निश्चित होता है कि आप राजशेखर से पूर्ववर्ती विक्रम सवत् ६६० से पहिले के विद्वान हैं।

* आचार्य अभिनव धर्मभूषण *

आपके माता पिता का नाम क्या था ? आपका जन्म और स्वर्गवास कब और कहां हुआ । इत्यादि का पता नहीं चलता ।

न्यायदीपिका के पहले और दूसरे प्रकाश के पुष्पिका वाक्यो में 'यति' विशेषण तथा तीसरे प्रकाश के पुष्पिका वाक्य मे 'अभिनव' विशेषण आपके नाम के साथ पाये जाते हैं । जिससे मालूम होता है कि न्यायदीपिका के रचयिता धर्मभूषण अभिनव और यति दोनो कहलाते थे । अभिनव आपका उपनाम था । तथा दि० साधु होने से आप यति कहलाते थे ।

विजयनगर के शिलालेख नं० २ से विदित होता है कि आप अपने गुरु श्रीवर्धमान भट्टारक के उत्तराधिकारी हुये । आप कुन्द-कुन्दाचार्य के आम्नाय में हुये हैं इसलिये आप दि० जैन मुनि थे और भट्टारक नामसे लोकविश्रुत थे

जैन परम्परा मे धर्मभूषण नाम के अनेक विद्वान् हो गये हैं । १—एक धर्मभूषण वे हैं जो भट्टारक धर्मचंद्र के पट्ट पर बैठे थे । जिनका उल्लेख शक सवत् १५५२, १५५५, १५७२ और १७७७ मे उत्कीर्ण [बरारप्रान्त के मूर्ति-लेखों में अधिकता से पाया जाता है । ये न्यायदीपिकाकार के उत्तरकालीन हैं ।

२—दूसरे धर्मभूषण वे हैं जिनके आदेशानुसार केशववर्णी ने अपनी गोम्मटसार की जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका बनाई है ।

३—तीसरे धर्मभूषण वे हैं जो अमरकीर्ति के गुरु थे । तथा विजयनगर के शिलालेख न० २ में उल्लिखित तीन धर्मभूषणों में पहिले नम्बर पर जिनका उल्लेख है ।

४—चौथे धर्मभूषण वे हैं जो अमरकीर्ति के शिष्य तथा विजयनगर के शिलालेख नं० २ गत पहिले धर्मभूषण के प्रशिष्य और सिंहनन्दी व्रती के सधर्मा हैं ।

न्यायदीपिका ग्रन्थ के कर्त्ता धर्मभूषण उपर्युक्त धर्मभूषणो से भिन्न हैं । न्यायदीपिका के अन्तिम

पद्य तथा अन्तिम पुष्पिका से आपके गुरु का नाम श्रीवर्धमान भट्टारक प्रमाणित होता है। न्यायदीपिका के मङ्गलाचरण पद्य मे भी 'श्रीवर्धमान' पद द्वारा सम्भवतया आपने श्रीवर्धमान तीर्थङ्कर के साथ ही अपने गुरुदेव 'वर्धमान' का स्मरण किया है।

विजयनगर मे शकसंवत १३०७ (१३८५ ई०) मे उत्कीर्ण एक शिलालेख मे धर्मभूषण यति की गुरुपरम्परा का विशद विवेचन किया गया है। जिससे निश्चित होता है कि अभिनव धर्मभूषण के साक्षात् गुरु श्रीवर्धमान मुनीश्वर और प्रगुरु द्वितीय धर्मभूषण थे। अमरकीर्ति दादागुरु और प्रथम धर्मभूषण परदादा गुरु थे।

आप देवराय प्रथम के समकालिक थे और आपका जीवनकाल ई० सवत् १३५८ से १४१८ तक समझना चाहिये। विशेष जानकारी के लिये श्रद्धेय पडित दरबारीलाल जी कोठिया, न्यायाचार्य की न्यायदीपिका की भूमिका पृष्ठ ९६ पर देखिये।

आप अपने समय के वडे प्रभावक और व्यक्तित्वशाली जैन गुरु थे। पद्मावती बस्ती के शासनलेख मे आपको अनेक मुनियो और राजाओ से पूजित वतलाया गया है। आपने विजयनगर के राजघरानो मे जैन धर्म की महती प्रभावना की।

आज तक आपकी अमर रचना एक न्यायदीपिका ही प्राप्त है जो जैन न्याय मे अपना विशिष्ट स्थान किये है और आपकी धवल कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये है। यह भी सम्भावना की जाती है कि कारुण्यकलिका नामक आपका कोई ग्रन्थान्तर भी है जो न्यायदीपिका से भी विशेष महत्त्वशाली होगा।

आप गुरु परम्परा से चले आये विजयनगर के भट्टारक के पद पर आसीन हुये थे इसलिये आपका जन्म और समाधि स्थान विजयनगर ही सम्भावित होता है।

* आचार्य प्रभाचन्द्र *

आचार्य प्रभाचन्द्र मूलसघान्तर्गत नन्दिगण की आचार्य परम्परा में हुए हैं।

मालूम होता है कि दीक्षा के बाद आप धारा नगरी चले आये थे और वहीं पर आपने अपने ग्रन्थो की रचना की। आप धाराधीश भोज के मान्य विद्वान थे। आपके प्रमेयकमल मार्तण्ड की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भोजदेव के राज्यमें बनाया गया था।

आपने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र आदि की प्रशस्ति में 'पद्मनन्दि सैद्धान्त' को अपना गुरु लिखा है। श्रवणवेलगोला के शिलालेख नंबर ४० मे गोल्लाचार्यके शिष्य पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का उल्लेख है और इसी शिलालेख में आगे चल कर प्रभाचन्द्र का शिष्यरूप से वर्णन किया गया है।

श्रवणवेलगुल के शिलालेख नं. ५५ में आपके गुरुरूप से 'चतुर्मुख देव' का भी उल्लेख है। परन्तु ये आपके द्वितीय गुरु या गुरुरूप हो सकते हैं।

आपने तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण, प्रवचनसारसरोजभास्कर (प्रवचन सार टीका), प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, शब्दाम्भोज भास्कर (जैनेन्द्रव्याकरणन्यास), महापुराणटिप्पण और गद्यकथा कोश आदि ग्रथोकी रचना की है।

कुलभूषण मुनि आपके सधर्मा (सहपाठी) थे। श्रवणवेलगोल के शिलालेख नं. ५५ में प्रभाचन्द्र को गोपनन्दि का सधर्मा भी कहा है।

हलेबेलगोल के एक शिलालेख नं. ४९२ मे होय्सल नरेश एरेयङ्ग द्वारा गोपनन्दि पडितदेव को दिये गये दानपत्र का उल्लेख है। यह दानपत्र पौष शुद्ध १३ संवत् १०१५ में दिया गया है। इस तरह सन् १०९४ मे प्रभाचन्द्र के सधर्मा गोपनन्दि की स्थिति होने से प्रभाचन्द्र का समय सन् १०६५ तक मानने का पूर्ण समर्थन होता

है। इस प्रकार आप धाराधीश भोज के समकालीन प्रमाणित होते हैं।

प्रभाचन्द्र ने पहले प्रमेयकमल मार्तण्ड बनाकर ही न्यायकुमुदचद्र की रचना की है। मुद्रित प्रमेय कमल मार्तण्ड के अन्त में जो पुष्पिका दी है। उसमें भोजराज का नाम है और न्यायकुमुदचन्द्र की पुष्पिका में उनके उत्तराधिकारी जयसिंहदेव का। अतः इस लेख से स्पष्ट है कि प्रभाचन्द्र का समय जयसिंह देव के राज्य से कुछ वर्षों तक अन्ततः सन् १०६५ मानना चाहिए। और यदि प्रभाचन्द्र ने ८५ वर्ष की उम्र पाई हो तो इनकी पूर्वावधि सन् ९८० मानी जाना चाहिए। विशेष जानकारी के लिए श्री प. महेन्द्रकुमार जी द्वारा लिखित प्रमेय कमलमार्तण्ड की भूमिका के पेज ६२, ६३, ६४ देखिये। वहाँ पर १४ युक्तियो से आचार्य प्रभाचन्द्र के उक्त समय की पुष्टि की गई है।

श्री० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने प्रमेयकमलमार्तण्ड की भूमिका में जैनेन्द्रमहावृत्ति के रचयिता अभयनन्दी का समय अनेक प्रमाणों से नवमी सदी सम्भावित किया है। तदनुसार इन्होने अपनी महावृत्ति ईस्वी सं० ९६० के लगभग बनाई होगी। इसी महावृत्ति पर आचार्य प्रभाचद्र ने अपना शब्दाम्भोजभास्कर न्यास बनाया है। क्योकि इसकी रचना न्यायकुमुदचन्द्र के बाद की गई है। और न्यायकुमुदचन्द्र जय-सिंहदेव (राज्य १०५६) के राज्य के प्रारम्भकाल में बनाया गया है।

प्रभाचद्र ने जैनेन्द्रव्याकरण के साथ ही पाणिनीय व्याकरण और उसके महाभाष्य का गम्भीर परिशीलन किया था। आप अपने शब्दाम्भोज भास्कर के प्रारम्भ में स्वय लिखते हैं कि 'शब्दानामनुशासनानि निखिलान्याध्यायता हर्निशम्' आचार्य प्रभाचन्द्र का पातञ्जल महाभाष्य का तलस्पर्शी अध्ययन उनके शब्दाम्भोज भास्कर में प्रारम्भ से पद पद पर अनुभूत होता है।

परीक्षामुख सूत्र पर प्रभाचन्द्र की ' प्रमेयकमलमार्तण्ड ' नामक विस्तृत व्याख्या है। तथा अकलङ्क देव के 'लघीयस्त्रय' ग्रन्थ पर इन्ही प्रभाचन्द्र का 'न्यायकुमुदचद्र' नामक वृहत्काय टीकाग्रन्थ है।

प्रभाचन्द्र ने इन मूल ग्रन्थो की व्याख्या के साथ ही साथ मूलग्रन्थ से सम्बद्ध विषयो पर विस्तृत लेख भी लिखे है। इन लेखो मे विविध विकल्प जालों से परपक्ष का खण्डन किया गया है।

आपकी कल्पनाशक्ति और विचारौदार्य अनुपम था। आप न्याय और व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

आपने अपने प्रमेयकमल मार्तण्ड और न्याय कुमुदचन्द्र में वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, सांख्य, मीमांसा, व्याकरण, काव्य और आयुर्वेद आदि अनेक विभिन्न शास्त्रो और सिद्धान्तो का जगह-जगह उल्लेख किया है। इससे विदित होता है कि आपके सभी दर्शनो और शास्त्रों का गहरा अध्ययन था।

प्रभाचन्द्र को आचार्य विद्या-नन्द के अष्टसहस्री और आप्त-परीक्षा आदि ग्रन्थो का अनूठा अभ्यास था। आपकी शब्दरचना भी विद्यानन्द की शब्दभङ्गी से पूर्ण प्रभावित है।
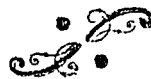
* आचार्य जटासिंहनन्दी *

आपने अपनी कृति मे किसी भी स्थल पर अपना शुभ नाम नहीं दिया, परन्तु आचार्य जिनसेन ने अपने हरिवंश पुराण के प्रथम-सर्ग के श्लोक नं० ३५ में आपके वराङ्गचरित्र का उल्लेख किया है।

उद्योतन-सूरि की कुवलयमाला के पृष्ठ ४२ पर भी वराङ्गचरित्र का उल्लेख किया गया है। धवल कवि ने अपने अपभ्रंश भाषा के हरिवंश में (ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग) वराङ्गचरित्र का उल्लेख किया है।

राजमल्ल (ई० स० ९७४-८४) के मंत्री और सेनापति चामुंडराय ने कन्नडगद्य में चामुंडराय पुराण (ई० ९७८) की रचना की है। इसका एक गद्यांश वराङ्गचरित्र के प्रथमसर्ग के छठे और सातवें श्लोक का व्याख्यानमात्र है और उसके बाद 'जटासिंह नन्द्याचार्य वृत्तम्' करके जो श्लोक उद्धृत है वह वराङ्गचरित्र के प्रथम सर्ग का का पन्द्रहवा पद्य है। अतः इसमे कोई संदेह नहीं कि चामुण्डराय के सामने वराङ्गचरित था।

ई० स० १५०५ मे लिखी गई चामुंडराय पुराण की ताडपत्र की एक प्रति मे वराङ्गचरित के उद्धृत पद्य के साथ उक्त पद मौजूद है। और उसकी मौलिकता मे सन्देह करने का कोई कारण नहीं दिखता। अतः चामुण्डराय के उल्लेख के अनुसार उक्त उद्धृत पद्य के कर्त्ता जटासिंहनन्द्याचार्य हैं और जब कि वह पद्य वराङ्गचरित का है अत. उसके कर्त्ता भी वही हैं।

जटासिंहनन्द्याचार्य ही जटा-चार्य हैं। जिनका आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण (ई० ८३८ में प्रथमसर्ग के २० वें श्लोक में उल्लेख किया है।

आदिपुराण की एक प्रति के कोने में जटाचार्य का असली नाम सिंहनन्दी लिखा है। इन प्रमाणो के आधार से कोई भी व्यक्ति यह अनुमान कर सकता है कि वराङ्गचरित के कर्त्ता का नाम

सिहनन्दि था और वे जटाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे।

सभवतः इसका कारण यह था कि वे जटाएँ रखते थे और जब वे अपनी काव्यरचना मे तल्लीन हो जाते थे तो उनकी जटायें चचल हो उठती थीं।

संभवतः सिहनन्दि नाम के किसी अन्य व्यक्ति से भेद करने के लियेही चामुण्डरायने जटासिह-नन्दि नाम का प्रयोग किया है। जो जटाएं रखता है उसे जटिल कहते हैं अतः हम जटिल और जटाचार्य को एक व्यक्ति मान सकते है। और कुवलयमाला तथा अपभ्र श भाषा के हरिवश के अनुसार जटिल वराङ्गचरित्र के रचयिता हैं। इस प्रकार निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि इस वराङ्गचरित्र को सिहनन्दि उपनाम जटासिंहनन्दि ने बनाया था, जो जटिल अथवा जटाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे।

विभिन्न शताब्दियो में सिह-नन्दि नाम के अनेक जैन साधु और ग्रथकार होगये हैं। वरांग चरित्र की भूमिका में पृष्ठ ६२ पर विभिन्न सात सिहनन्दियों की सभावना की गई है। गंगवंश की नींव डालने में सहायक सिहनंदि कर्नाटक प्रांत में खूब प्रसिद्ध हैं और सभवतः उन्हीं से भेद करने के लिये चामुण्डराय ने वरांग-चरित्र के कर्त्ता का जटासिहनन्दि के नाम से उल्लेख किया है।

निजाम स्टेट के कोप्पल (कोपण) ग्राम के निकट पल्ल-कीगुण्डु नाम की पहाड़ी पर अशोक के शिलालेख के समीप में दो पद चिह्न अंकित हैं। उनके ठीक नीचे पुरानी कनडी मे दो लाइन का एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि चावय्य ने जटासिह नन्द्याचार्यके पद चिह्नोको तैयार कराया। इससे यह निश्चित होता है कि जटासिंह नद्याचार्य ने कोप्पल ग्राममें समाधिमरण किया था।

ग्यारहवीं शताब्दीमें धवल कवि ने जटिल और उनके वरागचरित्र का उल्लेख किया है। १० वीं शताब्दी में चामुण्डराय ने उनका

उल्लेख किया है। नवमीं शताब्दी में जिनसेन द्वितीय ने अपने आदिपुराण में जटाचार्य के कवित्व की प्रशंसा की है। ८ वीं शताब्दी में जिनसेन प्रथम ने अपने हरिवंशपुराण (ई० ७८३ में) वरांगचरित्र का उल्लेख किया है। हरिवंश से ठीक ५ वर्ष पूर्व की कुवलयमाला में उद्योतनसुरि ने जटिल और उनके वरांगचरित्र का उल्लेख किया है। इन लेखों से यह सुनिश्चित है कि जटासिंह—नन्दी ई० स० ७७८ से पहिले हुए हैं।

वरांगचरित्र के सिवाय आप का कोई दूसरा ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका है। वरांगचरित्र को धर्म कथा ग्रंथ कहा गया है।

आपके जैनधर्म विषयिक विस्तृत अध्ययन था। आप एक धार्मिक शिक्षक और उपदेष्टा थे। आपने अनेक स्थानों पर इतर-मतों की आलोचना कर अंत में जैन सिद्धांत का समर्थन किया है।

आप कर्णाटक देश के निवासी थे और मोटे तौर पर आपके समय की सीमा ईस्वी संवत् ६५० से ७५० तक है।

विशेष जानकारी के लिये श्री० आदिनाथ उपाध्याय द्वारा लिखित श्री मा० दि० जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित वराङ्गचरित्र की भूमिका देखिये।

* कवि राजमल्ल *

कवि राजमल्ल जी कौन थे ? कहाँ के रहने वाले थे ? इनकी विद्या परपरा क्या थी ? इत्यादि बातो का कुछ भी पता नहीं लगता। फिर भी आपके ग्रन्थो परसे अनुमानतः यह पता लगता है कि आप एक जैन गृहस्थ त्यागी या ब्रह्मचारी थे।

आपने अपने द्वारा निर्मित लाटीसहिता के अत में एक प्रशस्ति दी है, जिसमे आपने अनेक बातों के बतलाने की प्रतिज्ञा करके अपने विपय में भी लिखने का सकेत किया है, परन्तु आपने अपने विषय में वहां कुछ भी नहीं लिखा है। मात्र कथामुख वर्णन नामक प्रथम सर्ग में व प्रशस्ति के अत में एक दो श्लोक आते हैं इसी से आप का थोड़ा बहुत परिचय मिलता है। आपने प्रशस्तिके अतमे लिखा है *

इस श्लोक में आपने अपना नाम राजमल्ल दिया है और अपने को हेमचन्द्रके आम्नाय का बतलाया है। इसमे आपने अपने को प्रसिद्ध विद्वान स्वीकार किया है। कथामुख वर्णन मे आपने अपने को मात्र सत्कवि घोषित किया है। इसके सिवाय आपका विशेप परिचय नहीं मिलता।

फिर भी आपकी सब रचनाओं के देखने से ज्ञात होता है कि आप न केवल अध्यात्मविद्या के बहुत बड़े विद्वान थे, अपितु पिंगल-शास्त्र, प्रथमानुयोग और चरणानुयोग आदि विपयो के भी विद्वान थे। स्याद्वादविद्या पर आपका एकाधिकार था।

आपने उच्चकोटि के अनेक ग्रन्थोका निर्माण किया है। संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश भाषा पर भी आपका अच्छा अधिकार था। विद्वानो ने आपको स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारद

---

* एतेपामस्ति मध्ये, गृहिवृप-रुचिमान्, फामन· संघनाथः,
तेनोच्चैः कारितेयं, सदनसमुचिता, संहिता नाम लाठी।
श्रेयोऽर्थं फामनीयैः, प्रमुदितमनसा, दानमानासनाद्यैः,
स्वोपज्ञा राजमल्लेन, विदितविदुपाम्नायिना हेमचंद्रे ॥३८॥

उपाधि से स्मरण किया है, इससे ज्ञात होता है कि आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता महान थी और आप सभी विपयो के विद्वान थे।

जम्बूस्वामीचरित्र, लाटीसंहिता, छंदोविद्या, अध्यात्मकमल-मार्तण्ड और पञ्चाध्यायी ये पाच ग्रन्थ आपके बनाये माने जाते हैं।

जान पडता है कि सर्व प्रथम आपने जम्बूस्वामीचरित की रचना की थी। इसका उल्लेख करते हुए जम्बूस्वामी चरित के कथा—मुख वर्णन मे श्लोक १३४ मे आपने स्वय लिखा है कि मैं पद मे तो सबसे छोटा हूँ ही, वय और ज्ञान आदि गुणो मे भी सबसे छोटा हूँ।

सर्वेभ्योऽपि लघीयांश्च केवल न क्रमादिह।
वयसोऽपि लघुर्बुद्धि-र्गुणै र्ज्ञानादिभिस्तथा

जम्बूस्वामी चरित को आपने १३ सर्गो मे पूर्ण किया है। यह टोडर साहु के निमित्त से लिखा गया है। ये गर्गगोत्री अग्रवाल भटानियाकोल (अलीगढ) के रहने वाले और काष्टासघी भट्टारक कुमारसेन के आम्नायी थे। कुमारसेन के गुरु भानुकीर्ति, भानुकीर्ति के गुरु गुणभद्र और गुणभद्र के गुरु मलयकीर्ति थे। इसमें इन्होने साहु टोडर की बहुत अधिक प्रशसा की है। प्रसग से इसमे मथुरा के ५०० से अधिक स्तूपो का भी परिचय दिया है। अकबर बादशाह और उसके कार्यो का गुणगान कई स्थलो पर किया है। इस चरित्र की रचना वि० सं० १६३२ में हुई है। आपकी तीसरी रचना लाटीसहिता का निर्माण भी वि० सं० १६४१ में हुआ है। इससे आप वि स की १७ वीं शताब्दी के विद्वान् प्रमाणित होते हैं।

आप प्रौढ विद्वान् होते हुए भी बड़े ही निरभिमानी थे। जिसका परिचय आपके अध्यात्मकमल मार्तण्डके अंतिम श्लोकसे ध्वनित होता है। आप लिखते हैं कि यह ग्रन्थ वास्तव में शब्द और अर्थ का कार्य है। इस दृष्टि से मैं राजमल्ल इसका कर्त्ता नहीं ठहरता। तदुक्तम्

भो विज्ञाः परमार्थतः कृतिरियं, शब्दार्थयोश्च स्वतः।
नव्यं काव्यमिद कृतं न विदुषा, तद्राजमल्लेन हि ॥२०॥

* आचार्य सोमदेव *

आप दि० जैन सम्प्रदाय के प्रामाणिक चार संघों में से देवसंघ के आचार्य थे। नीतिवाक्यामृत की गद्यप्रशस्ति और यशस्तिलक की पद्यप्रशस्ति से विदित होता है कि सोमदेवसूरि के गुरु का नाम नेमिदेव वा दादागुरु का नाम यशोदेव था तथा ये महेन्द्रदेव भट्टारक के अनुज थे।

सोमदेवसूरि के गुरु प्रकाण्ड दार्शनिक थे। क्योंकि उन्होंने ९३ वादियों को परास्त कर विजयश्री प्राप्त की थी। इसी प्रकार महेन्द्रदेव भट्टारक की वादीन्द्रकालानल उपाधि उनकी दिग्विजयिनी दार्शनिक विद्वत्ता प्रगट करती है।

सोमदेवसूरि अपने गुरु वा अग्रज के सदृश उद्भट दार्शनिक विद्वान थे। 'स्याद्वादाचलसिंह' 'वादिपञ्चानन' वा 'तार्किक—चक्रवर्ती' इत्यादि उपाधियां आपकी दार्शनिक प्रतिभा की प्रतीक हैं।

आपके द्वारा रचित यशस्तिलक चम्पू से प्रमाणित होता है कि आप महाकवि थे और काव्यकला पर आपका असाधारण अधिकार था। 'वाक्कल्लोलपयोनिधि' 'कविराजकुञ्जर' एवं 'गद्यपद्यदिवाकर चक्रवर्ती' आदि आपके विशेषण भी आपके महाकवित्व के प्रदर्शक हैं। आपके यशस्तिलक चम्पू का गद्य कादम्बरी और तिलकमञ्जरी की टक्कर का है।

अभी तक के विदित जैनाचार्यों वा विद्वानों में से सोमदेवसूरि के सिवाय किसी भी अन्य विद्वान वा आचार्य ने 'राजनीति' विषय पर शास्त्ररचना नहीं की। इससे आप महान राजनीतिज्ञ प्रतीत होते हैं।

आपका अध्ययन केवल जैन वाङ्मय में ही सीमित नहीं था किन्तु उपलब्ध समस्त न्याय, व्याकरण, काव्य, नीति, छन्द और अलङ्कार आदि विषयों पर आपका निर्बाध अधिकार था। यशस्तिलक चम्पू के अन्तिम दो अश्वास जैनधर्म पर आपकी गाढ श्रद्धा के प्रदर्शक हैं।

समय—यशस्तिलकचम्पू की प्रशस्ति मे लिखा है कि चैत्रशुक्ला १३ वि० सं० १०३६ में कृष्णराजदेव के सामन्त चालुक्यवंशीय अरिकेशरी के प्रथम पुत्र 'वद्दिग' की राजधानी गङ्गधारा में यह काव्य समाप्त हुआ।

दक्षिण के इतिहास से विदित होता है कि उक्त कृष्णराजदेव राठौर वंश के महाराज थे और इनका नाम अकालवर्ष था। ये अमोघवर्षतृतीय के पुत्र थे। इनका राज्यकाल वि० सं० १००२ से १०२९ तक प्रायः निश्चित है। सोमदेवसूरि ने अपने यशस्तिलक की प्रशस्ति में कृष्णराजदेव का उल्लेख किया है। इत्यादि प्रमाणो से विदित होता है कि सोमदेवसूरि विक्रम की ११ वी शताब्दी के विद्वान हैं।

ग्रन्थ—नीतिवाक्यामृत की 'प्रशस्ति' एवं 'दानपत्र' से विदित होता है कि सोमदेवसूरि ने—नीतिवाक्यामृत, यशस्तिलकचम्पू' युक्तिचिन्तामणि, त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प, स्याद्वादोपनिषद्, अनेकसुभाषित इन छह ग्रन्थो की रचना की है। इनमे से प्रारम्भ के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं शेष ग्रन्थो का अभी तक कोई पता नहीं। नीति-वाक्यामृत की प्रशस्ति में आचार्य सोमदेव ने स्वयं अपने इन ग्रन्थो का उल्लेख किया है। अतः आपकी अन्तिम रचना नीतिवाक्यामृत ही प्रतीत होती है।

* महाकवि वाग्भट *

वाग्भटालङ्कार ग्रन्थ के मंगलाचरण मे प्रथम जैन तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान को नमस्कार किया गया है, इससे निश्चित होता है कि इस ग्रन्थ के कर्ता महाकवि वाग्भट जैन सम्प्रदाय के विद्वान थे। कुछ टीकाकारो ने उक्त मङ्गल श्लोक का विष्णुस्तुति परक व्याख्यान किया है, परन्तु वह व्याख्यान व्याख्याता की बुद्धि की विलक्षणता मात्र का दर्शक होने से प्रमाण की कोटि मे नहीं आता। क्योकि अनेक जगह टीकाकार अपनी बुद्धि की प्रखरता से अनुचित अर्थ को भी प्रमाणित कर देते है।

वाग्भट के पिता का नाम सोम था। जिसका उल्लेख महाकवि वाग्भट ने वाग्भटालङ्कार ग्रन्थ के चतुर्थ परिच्छेद मे सङ्करालङ्कार के उदाहरण में स्वय किया है।

> ब्रह्माण्डशुक्तिसम्पुटमौक्तिक
> मणे प्रभासमूह इव।
> श्रीवाग्भट इति तनय आसीद्
> बुधस्तस्य सोमस्य ॥१॥

महाकवि वाग्भट अणहिल्लपाटला नगरी के जैनधर्मावलम्बी राजा कर्णदेव के पुत्र राजा जयसिहदेव के प्रधान मन्त्री थे। जिसका स्पष्टीकरण वाग्भटालङ्कार के टीकाकार श्री सिंहदेव गणी ने किया है।

वाग्भट ने अपने शुभ जन्म से किस नगर को अलकृत किया यह अभी तक निश्चित नही हो सका। सम्भवतः इनका जन्म अणहिल्लपाटलपुर मे हुआ होगा।

हेमचन्द्राचार्य प्रणीत द्व्याश्रय काव्य से विदित होता है कि ई० स० १०९३ से ११४३ तक अणहिल्लपाटलपुर में श्री जयसिहदेव का शासन था और महाकवि वाग्भट जयसिंहदेव के प्रधान मत्री थे। इसलिए वाग्भट का समय भी ई० स० १०९३ से ११४३ के बीच मानना चाहिए।

प्रभाचन्द्र मुनि रचित प्रभावक चरित्र से तो यह विदित होता है कि वाग्भट महाकवि सिद्धराज श्री जयसिंहदेव के पौत्र कुमारपाल के

मन्त्री थे। इससे वि० स० १२१३ ई० स० ११५७ मे महाकवि वाग्भट का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

अन्येद्यु र्वाग्भटामात्यं,
धर्मात्यन्तिकवासनः।
अपृच्छदर्हदाचार्यो
पदेष्टारं गुरं नृप. ॥१॥

श्रीमद्वाग्भटदेवोऽपि,
जीर्णोद्धारमकारयत्।
शिखीन्दुरविवर्षे च,
ध्वजारोपं व्यधापयत् ॥

वाग्भटालङ्कार ग्रन्थ में श्री महाकवि वाग्भट ने केवल अलङ्कारों का ही वर्णन नहीं किया, किन्तु कवित्वप्राप्ति के उपाय, काव्योत्पत्ति के कारण, बन्ध रचना के नियम, काव्य के दोष, काव्य के नियम, रीति और रसो आदि का विशद विवेचन किया है। जो इतनी सरल भाषा और सक्षेप मे है कि उसके हृदयङ्गत करने में जरा भी कठिनता प्रतीत नहीं होती।

* श्री आचार्य वीरसेन *

सिद्धंतछदजोइस—वायरणपमाणसत्थणिवुणेण ।
भट्टारएण टीका, लिहिया एसा वीरसेणेण ॥५॥

षट्खण्डागम की धवला टीका के अन्त मे आचार्य वीरसेन की परिचायक नौ गाथाएँ पाई जाती हैं जिनके द्वारा आपका साक्षात परिचय प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है—

आपके विद्या गुरु का नाम एलाचार्य था और सम्भवतः आपके दीक्षागुरु आर्यनन्दी थे। आप पचस्तूपाम्नाय के साधु थे।

आप सिद्धान्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और न्याय शास्त्र मे निपुण थे और भट्टारकपद से विभूषित थे।

आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण में भी गुरु वीरसेन की स्तुति की है। और आपकी भट्टारक पदवी का उल्लेख किया है। आपको वादिवृन्दारकमुनि कहा है और आपकी लोकविज्ञता, कवित्वशक्ति और वाग्मिता की प्रशसा की है। आपको 'सिद्धान्तोपनिबन्ध कर्ता' कहा है। तथा आपकी 'धवला' भारती को 'भुवनव्यापिनी' कहा है।

आपकी सूक्ष्म मार्मिक बुद्धि, अपारपाण्डित्य, विशालस्मृति और अनुपम व्यासङ्ग आपकी रचना के पृष्ठ पृष्ठ पर झलक रहे हैं। आपकी उपलब्ध रचना ६२ हजार श्लोक प्रमाण है। आपका अनुपम साहित्यिक परिश्रम और अपारप्रज्ञा प्रशंसनीय है।

ग्रन्थ—आपकी अन्य कोई कृति उपलब्ध नहीं होती। आपकी समस्त सज्ञान अवस्था का जीवन निश्चयतः इन सिद्धान्त ग्रन्थोके अध्ययन, सकलन और टीकालेखन मे ही बीता होगा।

द्वितीय सिद्धान्त ग्रन्थ कपाय-प्राभृत की टीका 'जयधवला' का एक भाग भी इन्हीं वीरसेनाचार्य का लिखा हुआ है। शेपभाग आपके शिष्य जिनसेन ने पूरा किया था। उसकी प्रशस्ति मे भी वीरसेन के सम्बन्ध में प्रायः ये ही बातें कही गई है।

इन्द्रनन्दी ने अपने श्रुतावतार मे वीरसेन द्वारा धवला और जयधवला लिखे जाने का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है।

समय—आपकी अपूर्णटीका जयधवला आपके शिष्य जिनसेन ने शक स० ७५९ की फाल्गुन शुक्ल दशमी को पूर्ण की थी। और उस समय अमोघवर्ष का राज्य था। मान्यखेट के राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम के उल्लेख उनके समय के ताम्रपटो में शक स० ७३७ से लगाकर ७८८ तक अर्थात् उनके राज्य के ५२ वें वर्ष तक के मिलते हैं। अतः जयधवला टीका अमोघवर्ष के राज्य के २३ वे वर्ष मे समाप्त हुई सिद्ध होती है। इसके कई वर्ष पूर्व धवला टीका समाप्त हो चुकी थी। और वीरसेनाचार्य दिवङ्गत हो चुके थे।

धवला टीका ७३८ शकसवत मे समाप्त हुई और जयधवला उसके पश्चात् ७५९ शक मे। तात्पर्य यह है कि लगभग २० वर्ष मे जयधवला के ६० हजार श्लोक रचे गये जिसकी औसत एक वर्ष मे ३ हजार आती है। इस अनुमान से धवला के ७२ हजार श्लोक रचने मे २४ वर्ष लगना चाहिये। अत उसकी रचना ७३८-२४ = ७१४ शक मे प्रारम्भ हुई होगी और चूकि जयधवला के २३ हजार श्लोक रचे जाने के पश्चात् वीरसेनाचार्य की मृत्यु हुई, और उतने श्लोको की रचना मे लगभग ७ वर्ष लने होगे अतः वीरसेन स्वामी के स्वर्गवास का समय ७३८+७=७४५ शक के लगभग आता है। तथा उनका कुल रचनाकाल शक स० ७१४ से ७४५ अर्थात् ३१ वर्ष पड़ता है।

* पंडित अर्हद्दास *

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मिन्, आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या, तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जृम्भे ॥१॥

श्री पण्डित अर्हद्दासजी ने स्वनिर्मित पुरुदेवचम्पू ग्रन्थ के अन्त मे लिखित उक्त प्रशस्ति में अपने को आचार्यकल्प श्रीआशाधर जी का शिष्य प्रमाणित किया है ।

इसी प्रकार आपके मुनिसुव्रत काव्य और भव्यजनकण्ठाभरण ग्रन्थ के अन्त मे भी आपने अपने को आशाधर जी का शिष्य लिखा है ।

श्री प० आशाधर जी विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के विद्वान् माने जाते हैं । इसलिये पण्डित अर्हद्दासजी भी विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के ही विद्वान् प्रमाणित होते है ।

ग्रन्थ—आपने पुरुदेवचम्पू, मुनिसुव्रतकाव्य और भव्यजन कण्ठाभरण ये तीन ग्रन्थ रचे है ।

आपने अपने भव्यजनकण्ठाभरणमे देव, शास्त्र, गुरुका तुलनात्मक पद्धति से ऊहापोह कर जैनोक्त देव, शास्त्र, गुरु के वास्तविकता, मद्यमास मधु की युक्तिपूर्वक हेयता और सम्यक्दर्शन के अष्ट अङ्गोका सोदाहरण विवेचन किया है जिससे आपका जैनधर्मानुयायित्व निर्विवाद है ।

प० अर्हद्दास काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे । आपकी कविता रसो, अलङ्कारो वा गुणो आदि से परिपूर्ण है । आपकी कल्पनाएं सरस और मधुर हैं । आपकी कृतिया कवि बाणभट्ट की टक्कर की हैं ।

आप बड़े ही स्वाभिमानी कवि थे । काव्य द्वारा आप किसी भी नरेश या वैभवशाली व्यक्ति की प्रशसा करना अपना अपमान समझते थे । आपने उन कवियो की अत्यन्त भर्त्सना की है जो अपनी काव्यकला को वैभवप्राप्ति या चापलूसी का साधन बनाते है ।

ॐ आचार्य यतिवृषभ ॐ

पणमह जिणवर वसहं, गणहर वसहं तहेव गुण [हर] वसहं।
दट्ठूण परिसय सहं, जदिवसहं धम्मसुत्तपाठक्वसहं ॥७८॥

तिलोयपण्णत्ति की इस गाथा में यतिवृषभाचार्य ने 'जदिवसह' पद के द्वारा अपना नाम सूचित किया है।

जयधवला में उक्त गाथा के दूसरे चरण में 'गुणवम्मह' के स्थान में 'गुणहरवसह' पाठ दिया है। इसलिये उक्त गाथा में हरशब्द जोडना आवश्यक प्रतीत होता है। इस प्रकार यह पद श्री गुणधराचार्य का वाचक हो जाता है। जिनके 'कषायपाहुड' सिद्धान्त ग्रन्थ पर यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रो की रचना की है।

चुण्णिसरूवं अत्थं, करणसरूवं,
पमाण होदि किं [१] जं तं।
अट्ठसहस्स पमाणं, तिलोय
पण्णत्तीए णामाए ॥ ७९ ॥

तिलोयपण्णत्ति की इस गाथामें इस ग्रन्थ का परिमाण आठ हजार श्लोक प्रमाण बतलाया है। साथ ही उस परिमाण को चूर्णि-स्वरूप अर्थ के और करणस्वरूप के परिमाण के बराबर बतलाया है। इससे दो बातें फलित होती हैं। एक तो यह कि गुणधराचार्य के 'कषायपाहुड' ग्रन्थ पर यति वृषभ ने जो 'चूर्णिसूत्र' रचे हैं, वे तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ से पहिले रचे जा चुके थे। दूसरी बात यह कि 'करण-स्वरूप' नाम का भी काई ग्रन्थ यतिवृषभ के द्वारा रचा गया था। जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। वह भी तिलोय पण्णत्ति से पहिले बन चुका था।

बहुत सभव है कि यह ग्रथ उन करण सूत्रों का ही समूह हो जो गणितसूत्र कहलाते हैं और जिनका कितना ही उल्लेख तिलोक प्रज्ञप्ति, गोम्मटसार, त्रिलोकसार और धवला जैसे ग्रन्थो मे पाया जाता है।

'चूर्णिसूत्रों' अथवा 'वृत्तिसूत्रों' की सख्या छह हजार श्लोक परिमाण है। अतः करणस्वरूप

ग्रन्थ की संख्या दो हजार श्लोक परिमाण होना चाहिये। तभी दोनो ग्रन्थो की संख्या मिलकर तिलोयपण्णत्ति का परिमाण आठ हजार बैठता है।

तिलोयपण्णत्ति में ग्रन्थकार ने न तो रचना का काल दिया है और न अपना भी कोई परिचय दिया है। उक्त दूसरी गाथा से इतना ही ध्वनित होता है कि वे धर्मसूत्र के पाठको मे श्रेष्ठ थे। इसलिये ग्रन्थकार, ग्रन्थ के समय और सम्बन्ध आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ लिखा जाना सहज नहीं।

चूर्णिसूत्रो से विदित होता है कि यतिवृषभ प्रौढ सूत्रकार थे। आपका तिलोय—पण्णत्ति ग्रन्थ आपके जैनशास्त्रो के विस्तृत अध्ययन को व्यक्त करता है। आपने अपने ग्रन्थ के महाधिकारो के सन्धिवाक्यो में यह स्वय स्वीकृत किया है कि इस ग्रन्थ का मूल विषय हमारा स्वरुचि विरचित नहीं है, किन्तु आचार्य-परम्परा के आधार पर है।

जो अज्ज—मंखुसीसो,
अंतेवासी वि नागहत्थिस्स।
सो वित्तिसुत्त कत्ता,
जइवसहो मे वरं देऊ ॥८॥

श्री वीरसेनाचार्य ने अपनी जयधवला के आदि मे मंगलाचरण करते हुए इस गाथा द्वारा यतिवृषभ का स्मरण किया है। इस गाथा में कषायपाहुड की जयधवला टीका के मूलाधार वृत्ति (चूर्णि) सूत्रों के कर्त्ता यतिवृषभ को आर्यमक्षु का शिष्य और नागहस्ति का अन्तेवासी बतलाया है।

इससे यतिवृषभ के दो गुरुओं के नाम सामने आते हैं। जिनके विषय में जयधवला ग्रथ से इतना और जाना जाता है कि श्री गुणधराचार्य ने कषायपाहुड का उपसंहार करके जो सूत्र गाथाएँ रची थीं, व इन दोनों को आचार्य परंपरा से प्राप्त हुई थीं और ये उनके सर्वाङ्ग अर्थ के ज्ञाता थे। इनसे समीचीन अर्थ को सुन कर ही यतिवृषभ ने उन सूत्र गाथाओं पर 'चूर्णि सूत्रों' की रचना की।

आचार्य वीरसेन ने यतिवृषभ का महाप्रामाणिक आचार्यरूप से उल्लेख किया है। एक प्रसग पर रागद्वेष मोह के अभाव को उनकी वचन प्रमाणता में कारण बतलाया है और उनके 'चूर्णि-सूत्रो' को असत्यविरोधी ठहराया है। इन सब बातो से आचार्य यतिवृषभ का महत्त्व स्वतः ख्यापित हो जाता है।

समय—तिलोयपण्णत्ति के अनेक पद्यो में 'सगाइणी' तथा 'लोक-विनिश्चय' ग्रन्थ के साथ 'लोकविभाग' नाम के ग्रथ का भी उल्लख पाया जाता है। यह 'लोकविभाग' ग्रन्थ उस प्राकृत लोकविभाग ग्रन्थ से भिन्न मालूम नहीं होना जिसे सर्वनन्दी आचार्य ने काची के राजा सिंहवर्मा के राज्य शक सवत् ३८० (वि० स० ५१५) मे लिखकर पाणराष्ट्र के पाटलिक ग्राम मे पूर्ण किया।

इसलिये तिलोयपण्णत्ति के रचयिता यतिवृषभ शक सवत् ३८० (वि० स० ५१५) के बाद हुए है, इसमे जरा भी सदेह नहीं। 'तत्तो कक्की जादो' इत्यादि तिलोय पण्णत्ति के उल्लेख से इसकी रचना कल्कि राजा की मृत्यु से दश-बारह वर्ष से अधिक बाद की सिद्ध नहीं होती। कल्कि राजा की मृत्यु का समय शक सवत् ३९५ है। इसलिये तिलोयपण्णत्ति की रचना का काल शक सवत् ४०५ (वि० स० ५४०) के करीब जान पड़ता है।

इस प्रकार यतिवृषभ का काल गुणधर, आर्यमक्षु, नागहस्ति और कुन्दकुन्द के बाद विक्रम की छटवीं शताब्दी निश्चित होता है।

आपने तिलोयपण्णत्ती नाम का ग्रन्थराज बनाया है। यह तिलोयपण्णत्तो (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) तीन लोक के स्वरूपादि का निरूपक महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें नौ महाधिकार, १८० अन्तराधिकार और ८००० श्लोक है।

विशेष जिज्ञासु 'श्री वर्णी अभिनन्दन' ग्रन्थ पृष्ठ ३२३ पर देखें।

* आचार्य पात्रकेशरी *

आपका शुभ जन्म ब्राह्मण वर्ण मे हुआ था। ब्राह्मणसमाज मे आपकी बडी प्रतिष्ठा थी। आप राज्य के उच्च-पद पर प्रतिष्ठित थे।

आप प्रारम्भ मे वैदिक मत के उपासक थे। स्वामी समन्तभद्र के देवागमस्तोत्र को सुनकर आप जैनधर्म में दीक्षित हुये थे। आप द्रविड सघ के अग्रगामी थे। आप आचार्य विद्यानन्द के पूर्ववर्ती हैं। आराधना कथाकोश में आपके जीवन के सबध मे निम्न इतिहास मिलता है।

अहिछत्र नगर में अवनिपाल राजा थे। उनके राज्य में वेद-विद्या विशारद ५०० ब्राह्मण विद्वान थे। उन्हे अपनी विद्याका अधिक गर्वथा।

उसी नगर मे भगवान पार्श्वनाथ का एक विशाल मन्दिर था। पात्रकेशरी प्रतिदिन वहा जाकर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा का दर्शन किया करते थे और दर्शन के अनन्तर अपना कार्य किया करते थे।

एक दिन सध्या के समय पात्र-केशरी पूर्वोक्त ब्राह्मण समुदाय के साथ पार्श्वमदिर आये। उस दिन कुछ दिगम्बर साधु भी पार्श्व-भगवान के दर्शन को वहाँ आये थे और देवागमस्तोत्र का पाठ कर रहे थे।

स्तोत्र को सुनकर ब्राह्मण संघ के अभिनेता पात्रकेशरी ने एक मुनिराज से उस स्तोत्र का अर्थ पूछा। मुनिराज से अपनी इच्छा की पूर्ति होते न देख पात्र-केशरी ने उनसे पुनः स्तोत्र पढने का आग्रह किया। स्तोत्र को सुनकर ही पात्रकेशरी ने अपनी विचित्र स्मरणशक्ति से उसे तत्काल ही कठस्थ कर लिया और उसके अर्थ का विचार करने लगे।

वे ज्यो-ज्यो स्तोत्र के अर्थ का विचार करते थे, त्यो-त्यो जैन तत्त्वो पर उनकी श्रद्धा बढ़ती गई, तो भी उनके अनुमान के लक्षण मे शंका उत्पन्न हुई। सशय के कारण उनकी निद्रा भङ्ग हो गई।

और पार्श्वनाथ भगवान की उपासिका पद्मावती देवी उसी समय उनके निकट आई। उसने पात्रकेशरी को सान्त्वना दी और कहा कि पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन से तुम्हारा सशय दूर होगा। यह कह देवी पार्श्व मदिर गई और पार्श्वनाथ की मूर्ति के फण पर निम्न श्लोक अकित कर दिया—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं॥

पात्रकेशरी ने प्रातः पार्श्व मदिर मे जाकर यह श्लोक पढा तो उनका सशय दूर हो गया और वे जैनधर्म के उपासक हो गये।

यह देख ब्राह्मण सघ के विद्वानो ने राज-सभा मे पात्रकेशरी के साथ वाद-विवाद किया, किन्तु पात्रकेशरी ने उन्हें वाद मे परास्त कर दिया। तब सभी ब्राह्मण सघ ने जैनधर्म को प्रशस्त जान अङ्गीकार किया।

कुछ समय वाद आप जैनधर्म के समर्थ आचार्य बन गये। आप दर्शन शास्त्र के उद्भट विद्वान थे। जैनधर्म के प्रकाण्ड विद्वान भगवज्जिनसेनाचार्य जैसे विद्वान ने आपकी स्तुति की है। अनेक विद्वान आपके निकट न्यायशास्त्र का अध्ययन करते थे। आप राज मान्य और प्रतिष्ठित आचार्य थे।

समय—आप अकलङ्कदेव के पूर्ववर्ती और पूज्य-पाद के उत्तरवर्त्ती मालूम होते हैं। बौद्ध विद्वान शात-रक्षित के तत्त्वसग्रह ग्रथ पर कमलशील ने एक टीका लिखी है जिसमें पात्रकेशरी के मन्तव्यो की समालोचना की गई है। यह टीका विक्रम की आठवीं शताब्दी मे लिखी गई है। इससे निश्चित होता है कि पात्रकेशरी इनसे पूर्ववर्ती छठवीं शताब्दी के विद्वान है।

ग्रन्थ—आपका एक पात्रकेशरी स्तोत्र ही अब तक उपलब्ध हुआ है। शेष कृतियो का पता नहीं चलता।

आपने न्यायविनिश्चयालकार नामक भी ग्रथ बनाया है, जिसमें आपने अपने द्वारा निर्मित त्रिलक्षणदर्शनकदर्थन ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। जो अप्राप्य है।

* कलिङ्गचक्रवर्ती सम्राट् खारवेल *

उड़ीसा प्रान्त मे उदयगिरि पहाड़ी पर एक प्राकृतिक गुफा है। स्थापत्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नही, किन्तु इसमें खोदी गई खारवेल की प्रशस्ति ने इसे बडी प्रसिद्धि दे दी है। इस गुफा को अब मदिर के रूप में परिणत कर दिया गया है। इस गुफा का नाम हाथीगुफा है।

खारवेल का जन्म अशोक की मृत्यु से ४० वर्ष पीछे ईस्वी सन् से पूर्व २०६।५ मे हुआ था। आप महाविजयी और राजर्षि वसु के वंश के थे। आपके पूर्वज 'ऐल' कहलाते थे और उनका मूल निवास स्थान चेदिदेश था। इन चदि लोगो का मूल निवास स्थान आधुनिक बुन्देलखण्ड था। आप के पिता का नाम चेतराज था।

महावीर स्वामी के समय से ही कलिंग का समूचा राष्ट्र जैन हो चुका था। खारवेल उसी राष्ट्र का तीसरा अधिपति था। वह जन्मतः जैन धर्मावलम्बी था। उसने अपनी प्रशस्ति के प्रारम्भ में अरहतों और सिद्धो को नमस्कार किया है।

खारवेल ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्रो मे बताये गये शुभ लक्षणो से युक्त, उज्ज्वल और सुन्दर शरीर वाला था तथा उसके गुण और यश चारो दिशाओ मे समृद्धि पा चुके थे।

लगभग पन्द्रह वर्ष की उम्र में खारवेल धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति और शस्त्रविद्या आदि सभी कलाओ मे पारङ्गत हो गया था।

पुराणो में कोशल के नौ राजा महाबल, बुद्धिमान मेघ नाम से ख्यात हैं। खारवेल और उसके उत्तराधिकारी भी अपने को मेघवाहन कहते थे। सम्भव है कि यह मेघवाहन उनके वश का नाम रहा हो। जैसे आन्ध्र वशी राजा सातवाहन कहलाते थे। दोनो ही वश समकालीन भी थे।

खारवेल के तीन रानियां थी।... वज्रगृहवती और सिंधुला। कदम्ब

और वडुरव नामक आपके दो पुत्र थे। जिनमें पहिला पुत्र कदम्ब खारवेल का उत्तराधिकारी हुआ। आपकी तीसरी रानी का नाम नहीं मिलता, परन्तु उक्त दोनों रानियो मे पटरानी या अग्रमहिषी कोई नहीं थी। हाथी गुफा के अग्रमहिषी के शिलालेख मे अग्रमहिषी के पिता का नाम हस्तिसिंह या हस्तिशाह लिखा है। लालार्क (सूर्य जैसा प्रतिभाशील) उसकी उपाधि दी है।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक आपने राजकुमारो के योग्य खेल खेलकर वचपन का सुख भोगा। इसके पश्चात् ६ वर्ष तक युवराज रहे। इस वीच आप राजकीय लिखा पढ़ी, मुद्राशास्त्र, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति तथा अन्य सभी कलाओ मे निष्णात हो चुके थे।

चौबीस वर्ष की अवस्था पूरी होने पर जब आप युवा हो गये तब पचीसवें वर्ष की अवस्था में १८२ ई० पूर्व मे कलिङ्ग राजवश के तीसरे राजा के रूप में आपका महाराज्याभिषेक हुआ।

राज्याभिषेक के अनन्तर ही आपने कलिङ्गनगरी के छिन्न-भिन्न गोपुर, प्राकार, उद्यान, तालाव और वावडी वगैरह का जीर्णोद्धार कराया और इन कार्यों मे लगभग पैंतीस लाख मुद्राएँ खर्च कीं।

अपने शासन के दूसरे वर्ष में आपने शातकर्णि के विपक्ष में पश्चिम दिशा पर आक्रमण किया। चौथे वर्ष मे विद्याधरो के नगरो को जीता। पाचवें वप मे नन्द-राज के द्वारा खोदी हुई नहर को तनसुलि के रास्ते कलिङ्ग नगरी तक वढ़ाया।

सातवें वर्ष में प्रसिद्ध रानी वज्रगृहवती से पुत्ररत्न की प्राप्ति की। आठवें वर्ष में राजगृह पर आक्रमण और अधिकार किया। नवमें वर्ष में कल्पद्रुम महामह करके विशाल दान दिया। दशवें वर्ष मे हाथीगुफा की प्रशस्ति लिखवाई। आपके इन सब कार्यों का विशद विवरण उक्त प्रशस्ति मे विस्तार से वर्णित है।

अग्रमहिषी के लेख में खार-वेल को चक्रवर्ती कहा गया है।

उसके चक्रवर्ती होने के प्रमाण शासन के दूसरे वर्ष से ही मिलने लगते हैं। शातकर्णि के विपक्ष में पश्चिम दिशा की विजय की तथा अन्य वर्षों में विद्याधरों आदि पर विजय पाकर भारतवर्ष और उत्तरापथ के राजाओं को भी जीता था यह उसकी स्पष्ट दिग्विजय थी। इस विजय के उपलक्ष्य में खारवेल ने राजसूय और कल्पद्रुम महायज्ञ किये। राजसूय और कल्पद्रुम महायज्ञ करना भी आपके चक्रवर्ती होने होने के प्रमाण हैं। जैन ग्रन्थों में लिखा है कि कल्पद्रुम महामह यज्ञ चक्रवर्ती ही करते हैं। इन्हीं यज्ञों के सुअवसर पर किमिच्छक दान दिया जाता है। इन प्रमाणों से आप सम्पूर्ण भारत के विजेता और चक्रवर्ती सिद्ध होते हैं।

खारवेल ने अनेक देवमंदिरों का जीर्णोद्धार कराया, सुन्दर-सुन्दर शिखर और महाविजय प्रासाद बनाया था। रानी सिंधुला के लिये वैडूर्य रचित स्तम्भों वाला उपाश्रय बनवाया तथा श्रमणों के लिये बाधानिवारणार्थ गुफाओं का निर्माण कराया।

उक्त प्रशस्ति से विदित होता है कि महाविजयी खारवेल क्षेमराज, वृद्धराज, भिक्षुराज और धर्मराज उपाधियों से विभूषित थे। ये उपाधियाँ इन्हें विशेष महनीय कार्य करने से उपलब्ध हुई थी।

मेगास्थनीज ने अपनी पुस्तिका 'इण्डिया' में लिखा है कि कलिङ्ग के राजा की सेना में ६० हजार सिपाही, १ हजार घुडसवार और ७०० युद्ध के हाथी थे। चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना ६ लाख थी। अशोक के समय में युद्ध के बाद कलिङ्ग की सेना की संख्या करीब साढ़े पांच लाख अवश्य होना चाहिये। और खारवेल के समय तो उसमें और भी अधिक वृद्धि हो गई होगी।

हाथी गुफा की प्रशस्ति से विदित होता है कि खारवेल ने भिन्न-भिन्न कार्यों में १४८ लाख नकद मुद्राएँ व्यय की थीं। और प्रतिवर्ष अनेक लोकोपकारी और धार्मिक कार्यों में विपुल द्रव्य व्यय करते थे।

आपने अनेक बार प्रजा पर अनुग्रह करके करमुक्ति की थी। कल्पद्रुम महामह में यथेष्ट दान दिया था। इन सब बातो से आपके विशाल कोप का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

आपकी प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। प्रजा की सुविधा और सुख के लिये आप सदा सचेष्ट रहते थे। प्रजा के हित के लिये आपने अनेक तालाब, बावडी, बगीचो और नहरो का निर्माण कराया था। आपके राज्य मे सवत्र सुकाल और शान्ति थी।

खारवेल की गणना भारत के उन प्रतापी राजाओ में की जाती है जिन्होने बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये है। अनुपम देशभक्त, योद्धा, प्रजारञ्जक और दानी के रूप मे खारवेल भारतीय इतिहास के गगन में आज भी चमक रहे हैं। कई अशो मे ये अशोक, चन्द्रगुप्त और अकबर आदि शासको से भी बडे थे।

* आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि *

आपके प्रारम्भिक नाम, धाम व गुरु परम्परा का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता।

धवलाकार ने आपके संबंध में इतना ही कहा कि जब महिमा नगरी मे सम्मिलित यतिसंघ को धरसेनाचार्य का पत्र मिला. तब उन्होने उनके श्रुतरक्षा सबंधी अभिप्राय को जानकर अपने सघ मे से दो साधु चुने, जो शिक्षाग्रहण और धारणाशक्ति में विशेष समर्थ तथा विनयशील देश, कुल तथा जाति में प्रशस्त और समस्त कलाओ मे पारङ्गत थे।

धवलाकार ने इन दोनों साधुओ को धरसेनाचार्य के निकट गिरिजगर (गिरनार) भेज दिया। धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की। एक को अधिकाक्षरी और दूसरे को हीनाक्षरी विद्या बताकर षष्ठो-पवास से उनको सिद्ध करने के लिये साधुओ से कहा।

जब विद्याएँ सिद्ध हुई तब एक बड़े बड़े दांतो वाली और दूसरी कानी देवी के रूप में प्रगट हुई। ऐसी देवियों को देखकर उन चतुर साधको ने जान लिया कि उनके मत्रो मे कुछ त्रुटि है। उन्हो ने विचारपूर्वक उनके अधिक और हीन अक्षरो की कमीवेशी करके पुनः साधना की, जिससे वे देविया अपने स्वाभाविक सौम्यरूप मे प्रगट हुई।

उनकी इस कुशलता से गुरु ने जान लिया कि ये सिद्धात सिखाने के योग्य पात्र है। फिर उन्होने उन्हे क्रमश सब सिद्धात पढ़ाये। यह श्रुताभ्यास आपाढ शुक्ला एकदशी को समाप्त हुआ और उसी दिन भूतो ने पुष्पोपहारो द्वारा सख, तूरी और वादित्रो को ध्वनि के साथ एक की बडी पूजा की इससे आचार्य श्री ने उनका नाम भूतबलि रक्खा।

दूसरे की दन्तपक्ति अस्त-व्यस्त थी। जो भूतो ने ठीक कर दी। इससे उनका नाम पुष्पदन्त रक्खा गया।

इन दोनो ने धरसेनाचार्य से सिद्धात शास्त्र की शिक्षा प्राप्त कर षट्खडागम ग्रथ की रचना की। इससे निश्चित है कि धरसेनाचार्य आपके गुरु है।

परन्तु आपके दीक्षागुरु का कोई उल्लेख नहीं मिलता। श्री ब्रह्मनेमिदत्त ने अपने आराधना कथाकोश में धरसेनाचार्य की कथा मे महासेनाचार्य को आपका दीक्षागुरु लिखा है। यह उन्होने किस आधार पर लिखा, यह विचारणीय है।

श्रवणवेलगोल के शिलालेख न० १०५ मे पुष्पदन्त और भूतबलि का स्पष्टरूप से सघभेदकर्त्ता अर्हद्बलि का शिष्य कहा गया है। पट्टावलि के अनुसार अर्हद्बलि के अतिम समय और पुष्पदन्त के प्रारभ समय मे २१+१९ =४० वर्ष का अन्तर पडता है, जिससे इनका समसामयिक होना असम्भव नहीं है।

षट्खडागम ग्रन्थ के पृष्ठ ७१ के उल्लेख से अंकुलेश्वर के निकट वनवास देश पुष्पदन्ताचार्य की जन्मभूमि प्रतीत होती है।

पुष्पदन्ताचार्य ने जिनपालित को दीक्षा दी तथा वीसदसूत्रो की रचना कर उन्हें पढाया और फिर उन्हें भूतबलि के पास भेज दिया। भूतबलि ने अल्पायु जान महाकर्म प्रकृति पाहुड के विच्छेद के भय से द्रव्यप्रमाण से लेकर आगे की ग्रन्थ रचना की इस प्रकार पुष्पदन्त और भूतबलि दोनो षट्खडागम सिद्धान्त के रचयिता हुये और जिन पालित उस रचना मे निमित्त हुये।

धवलाकार ने अपनी टीका के मङ्गलाचरण मे पहिले पुष्पदन्त को नमस्कार किया। इससे विदित होता है कि भूतबलि से पुष्पदन्त जेठे थे।

भूतबलि आचार्य ने षट्खडागम की रचना पुस्तकारूढ करके ज्येष्ठ शुक्ला ५ को चतुर्विध सघ के साथ उन पुस्तको को उपकरण मान श्रुतज्ञान की पूजा की थी। जिससे जैनसम्प्रदायमें श्रुतपचमी की प्रख्याति हुई।

धवलाटीका के वेदनाखड के

आदि में, जयधवला में व इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में गौतम स्वामी से लेकर लोहाचार्य तक का समय वीर निर्वाण संवत् के प्रारम्भ से ६८३ वर्ष बताया है। इसके पश्चात् धरसेनाचार्य हुये। षट्खंडागम की भूमिका पृष्ठ २४ पर धरसेनाचार्य का समय लोहाचार्य से ४० वर्ष बाद वीरनिर्वाण सं० के प्रारंभ से ७२३ वर्ष पश्चात् सिद्ध किया गया है। इस प्रकार आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि का समय वीरनिर्वाण सं० की छठवीं सातमीं शताब्दी प्रतीत होता है।

विशेष जानकारी के लिये षट्खंडागम खण्ड २ भाग १ की भूमिका पृष्ठ २४ से ३२ तक देखिये।
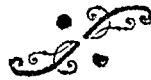
* अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु *

आपका शुभ जन्म वीर नि० सं० १६२ में पुड्रवर्धन देश के कोटीपुर नगर में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीदेवी और पिता का नाम सोमशर्मा था।

आठ वर्ष की आयु में एक दिन आप अपने साथियो के साथ गोलियाँ खेल रहे थे। सब बालक अपनी होशियारी से गोलियो को एक पर एक रख रहे थे। किसी ने दो, किसी ने चार, किसी ने आठ गोलियाँ, एक के ऊपर एक चढ़ा दीं, पर भद्रबाहु ने एक साथ चौदह गोलियाँ तले ऊपर चढ़ा दीं। यह देख सब बालक दग रह गये।

उसी समय चौथे श्रुतकेवली श्री गोवर्द्धनाचार्य गिरिनार की यात्रा को जाते हुए वहाँसे निकले। भद्रबाहु के खेल का चातुर्य देख निमित्त ज्ञान से उन्होने जान लिया कि पाचवें श्रुतकेवली यही होगे। वे भद्रबाहु को लेकर उनके पिता के पास गये और पिता से शिक्षा-दान के हेतु भद्रबाहु की माग की। आचार्य ने भद्रबाहु को पाकर खूब पढाया और उद्भट विद्वान बनाया।

भद्रबाहु घर आये परन्तु उनका मन घर में नहीं लगता था। उन्होंने माता-पिता से अपने साधु होने की प्रार्थना की। माता पिता को इससे बड़ा दु:ख हुआ। भद्रबाहु ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और गृहस्थी से उदास हो गोवर्द्धनाचार्य से मुनिदीक्षा ले ली।

गुरु गोवर्द्धनाचार्य की कृपा से भद्रबाहु चौदह पूर्व के विद्वान् हो गये। जब सघाधीश गोवर्द्धनाचार्य का स्वर्गवास हो गया तब भद्रबाहु श्रुतकेवली उनके आचार्य पद पर आसीन हुये।

आचार्य भद्रबाहु ससघ विहार करते हुए उज्जयिनी की ओर आये और आहार के लिये नगरमें गये।

जिस घर मे इन्होने पहिले ही पाव रखा, वहाँ एक बालक पलने में झूल रहा था। वह अभी तक बोलना नहीं जानता था। भद्रबाहु को घर में पाव देते देख, सहसा बोल उठा, जाइये ! महाराज,

जाइये। अबोध बालक को बोलता देख आचार्य चकित हुए। उन्हें निमित्त ज्ञान से विदित हुआ कि यहाँ १२ वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ेगा और धर्म की रक्षा करना तो दूर रहा, मानव को अपने प्राण बचाना भी कठिन होगा।

आचार्य भद्रबाहु अन्तराय मानकर लौट आये। इसी दिन कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन महाराज चन्द्रगुप्त ने सोलह स्वप्न देखे। उनमें अन्तिम स्वप्न बारह फण का सर्प देखा। महाराज ने भद्रबाहु से उन स्वप्नों का फल पूछा, तब आचार्य श्री ने एक स्वप्न का फल उत्तर भारत में १२ वर्ष का घोर दुर्भिक्ष बताया।

भद्रबाहु स्वामी ने समस्त संघ से कहा कि यहाँ बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ने वाला है, इसलिये आप अपने धर्म की रक्षार्थ, दक्षिण की ओर चले जावें। उन्होने दश पूर्व के विद्वान् अपने प्रधान शिष्य विशाखाचार्य के संरक्षण में बारह-हजार मुनियों को दक्षिण दिशा के चोलपांड देश की ओर रवाना कर दिया और अपनी आयु थोडी जान आप वहीं रह गये।

श्रावको के आग्रह से स्थूलाचार्य आदि कुछ साधु उज्जयिनी में ही रह गये। जो दुर्भिक्ष के कारण शिथिलाचारी हो गये।

सघ के वियोग से उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त बहुत दुखी हुये और उन्होंने दिगम्बर दीक्षा ले ली तथा आचार्य भद्रबाहु के निकट रहने लगे। आचार्य भद्रबाहु ने एक वट-वृक्ष के नीचे समाधि ले ली और परीषहो का विजय कर स्वर्ग गये।

दुर्भिक्ष हटने पर विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जयिनी आये। तब स्थूलाचार्य ने अपने साथियों को एकत्रित कर कहा कि अब शिथिलाचार छोड़ दो। परन्तु अन्य साधुओ ने उनकी बात नहीं मानी और क्रोधित हो उन्हें मार डाला। स्थूलाचार्य मर कर व्यन्तर देव हुये और उपद्रव करने पर वे कुलदेव मान कर पूजे गये।

इन शिथिलाचारियो से अर्ध-फालक (आधेवस्त्र वाले) सम्प्रदाय

का प्रादुर्भाव हुआ। उज्जयिनी में चन्द्रकीर्ति राजा था। उसकी कन्या चन्द्रलेखा वल्लभीपुर के राजा को व्याही थी। उसने अर्धफालक साधुओ से विद्याध्ययन किया था, इसलिये वह उनकी विशेष भक्त थी।

एक वार उसने अपने पति से साधुओ को अपने यहाँ बुलाने को कहा। बुलाने पर साधु आये। तब राजा ने उनका खूब स्वागत किया, परन्तु राजा को उनका वेष अच्छा नहीं लगा। रानी ने पति की आज्ञा से साधुओं के पास पहिनने के लिये श्वेत वस्त्र पहुँचा दिये। साधुओ ने उन वस्त्रो को स्वीकार किया। उस दिन से सब साधु श्वेताम्बर कहलाने लगे।

* वीर मार्तण्ड चामुण्डराय *

दक्षिण भारत के जैन इतिहास में वीर शिरोमणि चामुण्डराय का नाम स्वर्णाक्षरो में अंकित है।

आप ब्रह्म-क्षत्र वश के रत्न थे। आपके माता, पिता, जन्मस्थान और जन्म-तिथि का अद्यावधि निश्चय नहीं हो सका। परन्तु यह स्पष्ट है कि आपका अधिक समय गङ्गो की राजधानी नलकाण्ड मे व्यतीत हुआ।

चामुण्डराय की माता का नाम कालल देवी था। वह जैनधर्म की दृढ श्रद्धालु थी। श्री चामुण्डराय ने धर्मप्रतीति उन्हीं से ग्रहण की थी। आपकी धर्मपत्नी का नाम अजिता देवी था। इनकी कुक्षि से आपके एक पुत्ररत्न भी हुआ था।

चामुण्डराय के समय में महीशूर देश गङ्गवाडी नाम से प्रसिद्ध था और वहा ईस्वी की दूसरी शताब्दी में जैनधर्म प्रति पालक गङ्गवशी क्षत्रिय वीरों का राज्याधिकार था।

गङ्गवंश मे मारसिह द्वितीय नाम के एक राजा ईस्वी की दशवीं शताब्दी मे हुये थे। चामुण्डराय इन्हीं के सेनापति और राजमंत्री थे।

सन् ९७५ ईस्वी में नारसिह पराजित हुये तब उन्होंने आचार्य श्री अजितसेन के निकट बङ्कापुर में समाधिमरण किया। तब राजमल्ल द्वितीय ने गङ्गवश के राजसिहासन को सुशोभित किया था। और इनके पश्चात् 'राक्षस' गङ्गराज्य के अधिकारी हुये थे। चामुण्डराय ने इन दोनो राजाओ कीकीर्तिगरिमा को अपनी वहुमूल्य सेवाओ द्वारा सुरक्षित रखा था।

आचार्य आर्यसेन के निकट आपने शस्त्र और शास्त्र ज्ञान प्राप्त किया था, किन्तु आपके जीवन को ठीक राह पर लाने वाले श्री नेमिचन्द्राचार्य ही थे। अर्थात् आप के प्रधान गुरु नेमिचन्द्राचार्य ही थे और उनसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था।

उस समय महीशूर देश के भाग्यविधाता चामुण्डराय ही थे। आपकी इस श्रेष्ठता को लक्ष्य करके ही विद्वानों ने आपको 'ब्रह्मक्षत्र कुलभानु' और 'ब्रह्मक्षत्रकुलमणि' आदि विशेषणों से स्मरण किया है। अपनी सत्यनिष्ठा के कारण आप उस समय के 'सत्ययुधिष्ठिर' कहलाते थे।

अनेक बार विभिन्न युद्धो मे विजय पाने के उपलक्ष्य मे आप 'समरधुरन्धर' वीरमार्तण्ड, रणाङ्गणसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, भुजविक्रम, समरपरशुराम, भट-मार आदि विशेषणो से विभूषित और विख्यात थे।

आपके शासनकाल मे अनीति या अत्याचार लेशमात्र भी नहीं था। विद्या, कला, शिल्प और व्यापार की अच्छी उन्नति थी। आपके समय के बने सुन्दर मन्दिर, मनोहर मूर्तिया, विशाल सरोवर और उन्नत राजप्रासाद आज भी दर्शकों के मन को मोहित करते हैं।

चामुण्डराय के शासनकाल में साहित्यिक उन्नति भी खूब हुई। वास्तव में साहित्यिक उन्नति के विना देशोन्नति हो ही नहीं सकती। युद्धक्षेत्र की शान्त घड़ियों में ही चामुण्डराय ने कनडी चामुण्डराय पुराण की रचना की थी। चामुण्डराय ने राष्ट्रकूट राजाओ के हेतु कई लडाइया लडकर उन्हें गङ्गवश का चिर ऋणी बना दिया था।

आपके वैयक्तिक नाम 'चामुण्डराय' 'राय' और 'गोम्मटदेव' थे। चामुण्डराय नाम आपके माता पिता द्वारा रखा गया था। श्रवणबेलगोल में विन्ध्यगिरि पर्वत पर श्रीबाहुबलि स्वामी की मूर्ति का निर्माण कराने के कारण आप 'राय' नाम से प्रसिद्ध हुये थे। कन्नडभाषा में गोम्मट शब्द का अर्थ कामदेव है। चामुण्डराय ने कामदेव बाहुबलि की मूर्ति की स्थापना करके 'गोम्मट' नाम उपार्जन किया था। परन्तु आप वीरोचित गुणो के कारण 'वीरमार्तण्ड या वीरशिरोमणि' आदि नामो से प्रख्यात थे।

आपके पूर्वभव के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि आप कृतयुग में षण्मुख के समान, त्रेतायुग मे राम के समान और कलियुग मे 'वीरमार्तण्ड' थे। इत्यादि बातो से आपका व्यक्तित्व विख्यात है।

जिनधर्मानुरक्त माता की प्रेरणा से चामुण्डराय एकवार सघ सहित पोदनपुर के गोमटेश्वर की विशाल मूर्ति की यात्रार्थ गये। साथ मे आचार्य नेमिचन्द्र भी गये। जब यह सघ श्रवणवेल गोल के निकट पहुँचा, तब विदित हुआ कि मार्ग की विषमतावश पोदनपुर पहुँचना शक्य नहीं। तब सभी को बड़ा खेद हुआ। उसी समय पद्मावती देवी ने आकर श्री नेमिचन्द्राचार्य को बताया कि निकट की पहाडी पर राम रावण से पूजित एक प्राचीन विशाल काय बाहुबलि की मूर्ति उकेरी हुई है। उसका उद्धार कराकर चामुण्डराय की माता की मानसिक कामना सिद्ध कराइये।

आचार्य श्री का उपदेश पाकर चामुण्डराय ने उस मूर्ति का उद्धार कराकर चैत्र शुक्ल पचमी ता० १३ मार्च सन ९८१ मे प्रतिष्ठा कराई। यह ५८ फीट ऊची गोम्मट स्वामी की मूर्ति आज भी चामुण्डराय की कीतिपताका फहरा रही है और ससार की अद्भुत वस्तुओ में अद्वितीय है।

गोम्मट शिखर पर चामुण्डरायने एक मन्दिर बनवाया। जिस मे नीलमणि का एक हाथ प्रमाण एक प्रतिबिम्ब विराजमान किया।

आचार्य नेमिचन्द्र ने चामुण्डराय के हेतु गोम्मटसार सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की थी।

चामुण्डराय स्वय भी विशेष विद्वान् थे। आपने सस्कृत मे चारित्रसार और कनडी मे त्रिषष्टिलक्षणपुराण की रचना की है।

* सम्राट् चन्द्रगुप्त *

आप भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। ऐतिहासिक भारतीय साम्राज्य स्थापित करन का प्रथम श्रेय आपको है।

वीर निर्वाण स० १६२ के लगभग मगधदेश के नन्दवश में आपका जन्म हुआ था। आपकी माता का नाम मुरा था, इसीलिये आप मौर्य नाम से प्रसिद्ध हुये।

राजकुमार चन्द्रगुप्त की आयु जिस समय १२ वर्ष की थी उस समय महापद्म नामक नन्द राजा ने मगध पर अधिकार जमाया। उस समय चन्द्रगुप्त की माता चन्द्रगुप्त को लेकर अपने पिता के यहां आ गई। चन्द्रगुप्त ने वहा पर शस्त्र तथा अन्य विद्याओ का अध्ययन किया।

चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और वीर थे। किसी तरह आपकी वीरता का पता राजा नन्द को लग गया। नन्द के कोप से बचने के लिये चन्द्रगुप्त पश्चिम भारत की ओर चला गया और सिकन्दर की सेना का सञ्चालन करने लगा।

ई० पू० ३२३ में बाबुल में सिकन्दर की मृत्यु होने पर पञ्जाब और सीमान्त के राजा स्वाधीन हो गये, तब चन्द्रगुप्त इन सब के नेता बने।

२३ वर्ष की अवस्था में चन्द्रगुप्त ने प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य के साहाय्य से राजा नन्द को समूल नष्ट कर मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया। नन्दराजा के २० हजार घुड़सवार, दो लाख पैदल, दो हजार रथ और चार हजार हाथी चन्गुप्तके आधीन हुये।

चन्द्रगुप्त की सेना में ३० हजार घुडसवार, नौ हजार हाथी, छह हजार पैदल और बहुसख्यक रथ थे। ऐसी अजेय सेना की सहायता से उन्होने नर्मदा तक उत्तर भारत के सभी राजाओ को जीत लिया था। आपके साम्राज्य का विस्तार बॅगाल की खाडी से अरब समुद्र तक हो गया था। और आप भारत के प्रथम ऐतिहासिक चक्रवर्त्ती सम्राट् कहलाने के अधिकारी हुये।

दक्षिण एशिया के राजा सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस ने भारतीय प्रान्तो को चन्द्रगुप्त से छीनने की इच्छा से चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया, परन्तु वह चन्द्र गुप्त की सेना के सामने नही टिक सका और उसे चन्द्रगुप्त से सन्धि करना पड़ी। सेल्यूकस ने काबुल, कन्धार, हिरात और मकरान प्रदेश चन्द्रगुप्त को दिये और अपनी पुत्री भी चन्द्रगुप्त से व्याही।

आपने अपने बाहुबल से काबुल, कन्धार आदि मे हिन्दुओ का प्राधान्य स्थापित किया। पाटलिपुत्र (पटना) को राजधानी और चाणक्य को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया।

चन्द्रगुप्त का आदर्श उसके राज्यकौशल और पराक्रम के लिये स्वर्णाक्षरो में अङ्कित रहेगा। चन्द्र गुप्त प्रथम विजयी सम्राट् थे। आपका शासन विदेशो तक में था। आपका शासन प्रत्येक प्राणी के लिये सुखकर था।

चन्द्रगुप्त ने २२ वर्ष राज्य किया। आपका समय सन् ईस्वी ३२२ पूर्व से २६८ पूर्व तक रहा।

चन्द्रगुप्त बाल्यकाल से ही जैन धर्म के श्रद्धालु थे। श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली आपके धर्मगुरु थे। आपके राज्य में दि० जैन मुनियों का सदैव विहार होता था। आप हार्दिक श्रद्धा और भक्ति से उन्हे आहार दान देते थे।

एक समय महाराज चन्द्रगुप्त को रात्रि के पिछले पहर सोलह स्वप्न दिखाई दिये। (१) सूर्य का अस्त। (२) धूलसे आच्छादित रत्न राशि। (३) टूटती हुई कल्पवृक्ष की शाखा। (४) सीमा को उल्लघन करता हुआ समुद्र। (५) बारह फण वाला सर्प। (६) उलटता देव विमान। (७) ऊँट पर चढ़ा हुआ राजपुत्र। (८) लड़ते हुये दो काले हाथी। (९) रथ मे दो बछड़ो को जुता हुआ। (१०) हाथी पर चढ़ा हुआ वानर। (११) नाचते हुए भूत प्रेत। (१२) सोने के बर्तन में कुत्ते का भोजन करना। (१३) जुगनू का चमकना। (१४) सूखा तालाब। (१५) धूल में खिला हुआ कमल। (१६) चन्द्रमा में छिद्र।

प्रातःकाल महाराज चन्द्रगुप्त अपने स्वप्नो का फल पूछने के लिये अपने गुरु श्री भद्रबाहु के निकट गये और गुरुको नमस्कार कर उन्होसे स्वप्नो का फल पूछा

भद्रबाहु स्वामी ने बतलाया कि मगध देश मे १२ वर्ष का घोर अकाल पडेगा। पश्चात् सोलहो स्वप्नो के पृथक् पृथक् फल निम्नप्रकार बतलाये।

(१) द्वादशांग श्रुत के पाठियो का अभाव होगा। (२) मुनियो मे परस्पर फूट होगी, अनेक सघ स्थापित होगे। (३) क्षत्रिय जैन धर्म धारण नहीं करेंगे। (४) राजा नीति का पालन नहीं करेंगे। (५) बारह वर्ष का अकाल पड़ेगा। (६) अब कल्पवासी देवो का भरतक्षेत्र मे आगन नहीं होगा। (७) भारत के राजा जैनधर्म छोड़कर मिथ्यामार्ग ग्रहण करेंगे। (८) वर्षा थोड़ी व असमय मे होगी। (९) बाल्यावस्था में धर्म धारण किया जावेगा, परन्तु युवावस्था में धर्म में रुचि नही रहेगी। (१०) नीच जाति के मनुष्य राज्य प्राप्त करेंगे। (११) कुदेवों की विशेष रूप से पूजा होगी। (१२) धनी जन अनेक कुकर्मो में रत होगे। (१३) जैनधर्म का प्रभाव कम होगा। (१४) दक्षिण प्रान्त मे ही जैन धर्म पर विशेष आस्तिक्य रहेगा। (१५) जैनधर्म केवल वैश्यों मे ही रहेगा। (१६) जैनधर्म मे अनेक पन्थ वा सम्प्रदाय होगे।

दुर्भिक्ष के कारण श्री भद्रबाहु स्वामी जब दक्षिण भारत को जाने लगे तब महाराज चन्द्रगुप्त ने भी अपने पुत्र बिम्बसार को राज्य दे कर श्री भद्रबाहु स्वामी से दिगम्बर दीक्षा लेली और उनकी सेवा के लिये उनके साथ हो गये।

चन्द्रगुप्त दि० साधु होकर श्री भद्रबाहु स्वामी के साथ दक्षिण भारत पहुँचे और श्रवणबेल्गोल स्थान पर ठहर गये। वहा पर एक छोटी-सी पहाडी पर गुरु शिष्य ने तपस्या की और उनकी समाधि भी वहीं हुई।

* आचार्य वादिराज *

वादिराजमनु शाब्दिकलोको, वादिराजमनु तार्किकसिंहः ।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्यसहायः ॥

आपकी जन्मभूमि, माता-पिता आदि का कुछ भी पता नहीं चलता, फिर भी दक्षिण-मद्रास प्रांत मे आपका होना अनुमानित किया जाता है।

आप के गुरु का नाम मति-सागरमुनि था। ये द्रविड संघ के आचार्य थे। और दयापाल मुनि आप के सहपाठी थे। वादिराज नन्दिसघ के आचार्य थे और आपकी शाखा का नाम अरुंजल था।

सिद्धान्त, काव्य, व्याकरण और अलङ्कार विषय के आप मर्मज्ञ विद्वान थे। षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति और जगदेक-मल्लवादि आदि अनेक उपाधियो से आप विभूषित थे।

आप सभा में बोलने के लिये अकलङ्कदेव के समान, वचनो में वृहस्पति के समान, कीति मे बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति के समान और न्यायवाद मे गौतम के समान थे।

जयसिंहपुर नरेश चालुक्यवंशीय महाप्रतापी राजा जयसिंह आपकी तपस्या, विद्वत्ता और काव्यशक्ति पर अत्यन्त मुग्ध थे। मुनिराज के चरण-कमलो से उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। जयसिंह नरेश को आपकी विद्वत्ता का अभिमान था। आचार्य महोदय को आपने 'जगदेकमल्लवादि' नामक उपाधि से सम्मानित किया था।

एक समय आपका सारा शरीर कुष्ट-रोग से पीड़ित हो गया। आप के शिष्यो को यह सब विदित था, परन्तु राजा जयसिंह को इस बात का बाध नहीं था। एक बार राज दरबार मे एक श्रावक से आचार्य के कुष्ट को लेकर वाद विवाद चल पड़ा। गुरुभक्त श्रावक गुरुनिन्दा के भय से कुष्ट-रोग को छिपाना चाहता था, किन्तु अन्य व्यक्ति उसे प्रगट करना चाहते थे।

श्रावक ने निश्चित रूप से कह दिया कि मेरे गुरु कोढी नही हैं, किन्तु विवाद का अन्त नहीं हुआ। राजा ने स्वय वादिराज के दर्शन का निश्चय किया। यह जान उस श्रावक का मन बहुत ही विकल हो उठा। परन्तु अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा।

श्रावक आचार्य महोदय के पास गया और सम्पूर्ण समाचार सुनाया। उन्होने कहा कि चिन्ता मत करो। धर्म के प्रभाव से सब कुछ होना सभव है। उसे सान्त्वना देकर आचार्य महोदय ने एकीभावस्तोत्र रचना प्रारभ किया। उस स्तोत्र का चौथा पद्य पढ़ते ही उनका कुष्टमय शरीर स्वर्ण की भाति निर्मल होगया।

वादिराजके इस माहात्म्य को देखकर वह श्रावक, राजा जयसिंह को मुनिराज के दर्शनार्थ लाया। महाराज जयसिंहने जब मुनिराजके शरीर को निरोग और कन्तिमय देखा, तब उन्हें उस व्यक्ति पर बड़ा क्रोध आया जिसने मुनि महाराज को कुष्ट से आक्रान्त बताया था।

क्रोध में आकर राजा उसे दण्ड देना चाहते थे, परन्तु वादिराज ने उन्हें रोका और कहा कि महाराज! उस बेचारे का कोई अपराध नहीं, वास्तव में मेरा शरीर कुष्ट रोग से अक्रान्त था। किन्तु धर्म के प्रभाव से आज मेरा कुष्ट रोग दूर हो गया है। आचार्य महोदय के इस चमत्कार को देख कर महाराज जयसिंह पर बड़ा प्रभाव पड़ा और जैनधर्म के अनुयायियो पर उनके हृदय मे सन्मान का भाव जागृत हुआ।

समय—आपने अपने पार्श्वनाथ चरित्र का निर्माण विक्रम सं. १०८२ में किया था। इससे आपका जन्म वि० स० १०४० के निकट होना प्रतीत होता है।

ग्रन्थ—आपने एकीभावस्तोत्र, पार्श्वनाथचरित्र, काकुस्थचरित्र, यशोधरचरित्र, न्याय-विनिश्चय विवरण और प्रमाण-विवरण इन छह ग्रन्थोकी रचना की है।

इन ग्रन्थो की रचना से विदित होता कि आपका ... दर्शन और काव्य आदि [illegible] पर अगाध अधिकार था।